चेतना
का
सहज- स्वभाव,
स्नेह-सहयोग
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
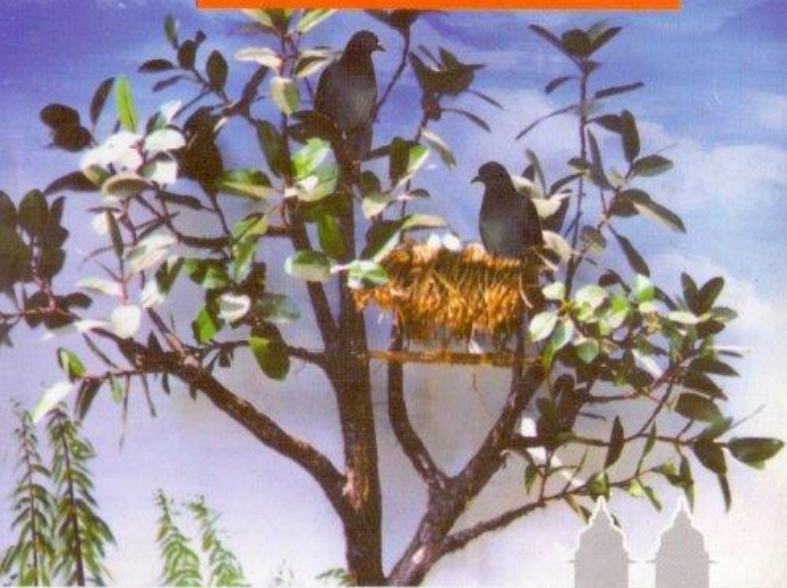
चेतना का सहज स्वभाव
स्नेह-सहयोग

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११   मूल्य : २२-०० रुपया

विषय सूची

■

सहयोग-सहकार प्रगति के मूल आधार

प्रकृति का प्रत्येक घटक अपने एक निश्चित नियम के अनुसार जन्म लेता और विकास करता है। यह नियम–व्यवस्था किन्हीं विशिष्ट क्षेत्रों के लिए ही लागू नहीं होती, बल्कि जहाँ कहीं भी प्रगति, विकास और गतिशीलता दिखाई देती है, वहाँ यही नियम काम करते दिखाई देते हैं।

समझा जाता है कि मनुष्य ने इस प्रकृति में अन्य सभी प्राणियों से अधिक उन्नति तथा विकास किया है। उस उन्नति और विकास का श्रेय उसकी बुद्धिमत्ता को दिया जाता है। मनुष्य की बुद्धिमत्ता को उसकी प्रगति का आधार मानने में कोई हर्ज भी नहीं है क्योंकि उसने बुद्धिबल से ही अन्य प्राणियों की तुलना में इतनी अधिक उन्नति की है, जिससे सृष्टि का मुकुटमणि बन सकने का श्रेय उसे प्राप्त हो सका। इस मान्यता में यदि कुछ तथ्य है तो उसमें एक संशोधन यह और करना पड़ेगा कि बुद्धिमत्ता उसे सहकारिता के आधार पर ही उपलब्ध हुई है। क्या मनुष्य ने उन्नति अपनी मस्तिष्कीय विशेषता के कारण की है? मोटी बुद्धि ही इस मान्यता का अंधा समर्थन कर सकती है। सूक्ष्म चिंतन का निष्कर्ष यही होता है कि कोई–न–कोई आत्मिक सद्‌गुण ही उसके मस्तिष्क समेत अनेक क्षमताओं को विकसित करने का आधार हो सकता है। महत्त्वपूर्ण प्रगति न तो शरीर की संरचना के आधार पर संभव होती है और न मस्तिष्कीय तीक्ष्णता पर अवतरित रहती है। उसका प्रधान कारण अंतःकरण के कुछ भावनात्मक तत्त्व ही होते हैं। उन निष्ठाओं

की प्रेरणा से इच्छाशक्ति जगती है, सक्रियता एवं तत्परता उत्पन्न होती है, मस्तिष्क तथा शरीर के कलपुरजे एकजुट होकर काम करते हैं और निष्ठा के अनुरूप दिशा में कदम तेजी से बढ़ाते चले जाते हैं। व्यक्ति सदा से इसी आधार पर ऊँचे उठते और नीचे गिरते रहे हैं।

मनुष्य की बुद्धिमत्ता, शारीरिक चेष्टा और प्रयत्नपरायणता के मूल में जो अत्यंत प्रेरक दिव्य प्रवृत्ति झाँकती है, उसे सहकारिता कह सकते हैं। वस्तुतः यही मानव प्राणी की सबसे बड़ी विशेषता है। अन्य प्राणियों में यह वृत्ति यत्किंचित् पाई तो जाती है, पर प्रायः वह शरीर की समीपता तक ही सीमित रहती है। मानसिक आदान-प्रदान कर सकने योग्य उनकी स्थिति नहीं है। कुछ पशु-पक्षी जोड़े बनाकर समूह में साथ-साथ रहने के अभ्यस्त तो होते हैं, इससे उन्हें सुरक्षा में सहायता मिलती है, कुछ और छोटे-मोटे शारीरिक आदान-प्रदान कर लेते हैं, पर मानसिक और भावनात्मक आदान-प्रदान उनसे बन नहीं पड़ता। सहकारिता वृत्ति का सीमित प्रयोग कर सकने के कारण ही अन्य प्राणी सृष्टि के आदि से लेकर अब तक जहाँ-के-तहाँ पड़े हैं, जबकि मनुष्य उस दिव्य प्रकृति को अधिकाधिक विकसित करते हुए उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँच सकने में सफल हो गया।

दो जड़ पदार्थ अथवा अविकसित प्राणी मिलकर दो की संख्या ही बनाते हैं। दो बैल मिलकर एक की अपेक्षा दूना वजन भी खींच सकते हैं। एक की अपेक्षा दो रुपये हों तो दूना सामान खरीदा जा सकता है। किंतु भावप्रधान मनुष्य प्राणी का जहाँ सघन सहयोग आरंभ होगा, वहाँ यह नियम बदल जाएगा और एक-एक मिलकर ग्यारह की संख्या बन जाएगी। १ और १ के अंक नीचे-ऊपर रहें तो उनका जोड़ २ होगा किंतु उन्हीं अंकों को बराबर लिख दें, तो संख्या ११ बन जाएगी। अंकगणित का यही सिद्धांत भाव-प्रधान मनुष्य पर लागू होता है। दो बुद्धिमान चीते

मिलकर वन की सुव्यवस्था बिगाड़ तो सकते है, पर बना नहीं पाते, क्योंकि भावनात्मक सहयोग के अभाव में वे एक दूसरे को नीचा दिखाने का ताना-बाना बुनने के अतिरिक्त कुछ कर नहीं सकते, एक-दूसरे से आत्मरक्षा करने और आक्रमण का अवसर ढूँढ़ने के अतिरिक्त और वे कुछ सोच नहीं सकते। यदि सिंहों में—हाथियों में भावनात्मक एकता की—सहकारिता की वृत्ति रही होती और मनुष्य उस दिव्य अनुदान से वंचित रहा होता, तो निश्चित ही वे बलिष्ठ प्राणी संसार का शासन कर रहे होते और मनुष्य उनकी कृपा पाने के लिए लालायित रहता हुआ किसी प्रकार जिंदगी के दिन पूरे कर रहा होता।

मानवी विकास के इतिहास पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट है कि आदिम काल में वह भी अनगढ़ वानरों की तरह-का पशु मात्र था। उनकी बुद्धि कुछ पैनी तो थी पर उतने तीखे मस्तिष्क तो अन्य अनेक प्राणियों के भी पाए जाते हैं। चमगादड़, कुत्ता, चींटी, मधुमक्खी, मकड़ी जैसे प्राणियों की इंद्रिय शक्ति मनुष्य की तुलना में कहीं अधिक विकसित है और ऋतु-परिवर्तन जैसी सूक्ष्म संभावनाओं को समझने की दृष्टि से कितने ही जीव मनुष्य से आगे हैं। पर वे कोई खास विकास नहीं कर सके जबकि मनुष्य दिन-दूनी रात-चौगुनी प्रगति करता चला जाता है। तथ्यों की गहराई में प्रवेश करते हुए मनुष्य की एक ही सर्वोपरि विशेषता उभरकर आती है—सहकारिता की प्रवृत्ति। एक-दूसरे के प्रति आत्मीयता की, ममता की, सहायता की जो सद्भावनाएँ उमड़ती हैं, उसके समन्वय को सहकारिता कहते हैं। उसमें आदान-प्रदान का, परस्पर मिल-जुलकर रहने का, मिल-बाँटकर खाने का व्यवहार अनिवार्य रूप से जुड़ा रहता है। यही है मानवी प्रगति का मूलमंत्र। जहाँ भी इस प्रवृत्ति का जितना अधिक उपयोग हुआ है, वहाँ उसी अनुपात से सर्वतोमुखी प्रगति की गति तीव्र हुई है। जहाँ इसकी जितनी न्यूनता रही है, वहाँ

उतनी ही मात्रा में जड़ता छाई रही है। संसार के अनेक क्षेत्रों में मनुष्य अभी भी आदिम अवस्था में पाए जाते हैं, उनकी अवगति में भावनात्मक सहकारिता की न्यूनता ही प्रधान अवरोध बनकर खड़ी दृष्टिगोचर होती है।

आदिम काल में मनुष्य भी बंदरों की तरह ही चीं-चीं बोलता था। उसने अपने मुँह से निकलने वाले कई शब्दों को अलग किया और हर उच्चारण के साथ एक जानकारी जोड़ी। यह उसकी बुद्धिमत्ता कही जा सकती है। इसमें चार चाँद तब लगे, जब उसने उच्चारण के साथ जुड़े हुए संकेतों की जानकारी दूसरे साथियों को कराई। यहाँ से शब्द विज्ञान का प्रवाह चल पड़ा। पीढ़ियों तक—सहस्राब्दियों तक इस दिशा में प्रगति होती रही और आज हम उच्चारण क्षमता का पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं। आरंभिक लिपि भी आड़ी-टेढ़ी लकीरों के साथ अमुक जानकारियाँ जोड़ने के रूप में आरंभ हुई पीछे अक्षरों का—स्वर व्यंजनों का—अंक विद्या तथा रेखागणित का आविर्भाव हुआ और क्रमशः सर्वांगपूर्ण शिक्षा विज्ञान बनकर खड़ा हो गया। आज हमारी लेखनी और वाणी इतनी विकसित है कि उसके द्वारा अति महत्त्वपूर्ण जानकारियों का विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक आदान-प्रदान अति सरल हो गया है।

कृषि, पशुपालन , चिकित्सा, विज्ञान, शिक्षा, शिल्प, कला, व्यवसाय, उद्योग, परिवार, समाज, शासन आदि ज्ञान-विज्ञान की अगणित उपलब्धियाँ हमारे सामने प्रस्तुत हैं और हम देवोपम साधन-संपन्नता का उपभोग कर रहे हैं। यह सारा वैभव—चमत्कार सहकारिता की सत्प्रवृत्ति का है। एक आदमी दूसरे के साथ सघन आत्मीयता स्थापित न करता—दूसरों के सुख-दुःख में भागीदारी करने में उत्साह न रहता, तो सहयोग की इच्छा ही न उठती और आदान-प्रदान का सिलसिला न चलता। इस स्थिति से उस प्रगति की कल्पना भी नहीं की जा सकती है जिनके कारण मनुष्य जीवन को सुरदुर्लभ अनुभूतियों

से भरा-पूरा माना जाता है। यर्थाथता यह है कि सहयोग और उत्कर्ष एकदूसरे की न आशा की जा सकती है और न संभावना ही बनती है।

एकाकी मनुष्य जीवित भर रह सकता है। उल्लास एवं उत्कर्ष के लिए उसे साथी ढूँढ़ने पड़ते हैं और समूह में रहने की व्यवस्था जुटानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त स्नेह, सद्भावना, आत्मीयता एवं घनिष्ठता के इतने गहरे पुट लगाने पड़ते हैं कि एक-दूसरे के लिए तत्पर रहें। दूसरे के दुःख बँटाने और अपने सुख को दे डालने में प्रसन्नता अनुभव करें। ऐसी स्थिति जो जितनी अधिक और जितने अच्छे स्तर की बना सकता है, वह उतना ही सुखी, समुन्नत एवं सुसंस्कृत पाया जाता है। अनेकानेक सद्गुण इसी सहयोग रूपी कल्पवृक्ष के पत्र-पल्लव समझे जा सकते हैं। जिनका जितना ध्यान इस प्रवृत्ति को विकसित करने वाले आधार खड़े करने की ओर है, वे अपनी, अपने संपर्क परिकर की उतनी ही महत्त्वपूर्ण सेवा कर रहे होते हैं।

मनुष्य जन्मजात रूप से बुद्धिमान नहीं होता। पशुओं के बच्चे बिना सिखाए माता के थन और अपनी खुराक आप ढूँढ़ लेते हैं जबकि मनुष्य का बच्चा कई वर्ष का होने तक पेट भरने तक में पराश्रित रहता है। भेड़ियों की माँद में पाया गया तीनवर्षीय रामू भेड़ियों की तरह ही चलता, बोलता, खाता, सोता है। शिकारियों ने उसे पकड़ा और लखनऊ मेडीकल कॉलेज में उसके सुधार का उपक्रम हुआ, तो यह मनुष्य सभ्यता को बहुत थोड़ा ही अपना सका। यदि जन्मजात बुद्धिमत्ता मनुष्य को मिली होती, तो घने जंगलों में रहने वाले पिछड़े हुए आदिवासी अपनी सहज वृत्ति से अन्य लोगों की तरह सभ्य हो गये होते। वस्तुतः मनुष्य को बुद्धिमत्ता सहित जितनी भी उपलब्धियाँ मिली हैं, उन सबकी जननी सहकार प्रवृत्ति ही है।

धर्म और अध्यात्म का सारा कलेवर वैयक्तिक और सामाजिक नैतिकता को अधिकाधिक परिष्कृत करने के लिए खड़ा

किया गया है। भौतिकशास्त्र की मर्यादाओं में बँधकर ही वैयक्तिक और सामूहिक सुख-शांति का—प्रगति-समृद्धि का पथ-प्रशस्त होता है, यह तथ्य सर्वमान्य है। आचार संहिता में व्यतिरेक पड़ते हैं, तो सर्वत्र असुरक्षा, आशंका और आतंक का वातावरण छा जाता है। इतना समझ लेने के बाद गहराई की एक सीढ़ी और उतरा जाय तो पता चलेगा कि यह सब कुछ मात्र सहयोग की वृत्ति को सुदृढ़ बनाने और उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं को हटाने भर के लिए हैं। धर्मशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र, आचारशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि मानवी चेतना को प्रभावित करने वाली सभी चिंतन धाराएँ मिल-जुलकर एक ही घेराबंदी करती हैं कि मनुष्य पारस्परिक सहयोग की दिशा में अधिक उत्साह के साथ अग्रसर हो और इस मार्ग में जितने भी व्यवधान आते हैं, उन्हें हटाने के लिए पूरी तरह सचेष्ट रहे।

सारा विश्व एक शरीर

मनुष्य ही क्यों समस्त विश्व की अन्य इकाइयाँ भी आपस में और एकदूसरे से सहयोग-सहकार बरतकर ही अपने अस्तित्व की रक्षा तथा उसका विकास करती हैं। एक शरीर में विद्यमान भिन्न-भिन्न अंगों का महत्त्व और उपयोगिता उनके सामर्थ्यगत स्वरूप के कारण है। उँगली, हथेली, हाथ-पैर, पेट, छाती, गरदन, सिर आदि अंग अलग-अलग कट कर बेजान अंग ही रह जाएँगे, उनसे न कोई काम किया जा सकता है और न उनकी कोई महत्ता सिद्ध होती है।

इन तमाम अंगों की महत्ता तभी तक है, जब तक कि वह शरीर में जुड़े रहें। समस्त विश्व को यदि एक शरीर कहा जाय, तो उसमें मनुष्य का स्थान एक उँगली के बराबर ही समझा जा सकता है। उँगली का महत्त्व तभी तक है जब तक कि वह शरीर के साथ जुड़ी हुई है।

असंख्य आत्माओं में जगमगाने वाली चेतना की ज्योति का केंद्र एक ही है। पानी की प्रत्येक लहर पर एक अलग सूर्य चमकता है, पर वस्तुतः वह एक ही सूर्य की अनेक प्रतिच्छवियाँ हैं। समुद्र की हर लहर का अस्तित्व भिन्न दिखाई पड़ने पर भी वस्तुतः वे विशाल सागर की हिलोरें ही हैं। इस समस्त विश्व में केवल एक ही समष्टि आत्मा है, जिसे परमात्मा के नाम से पुकारते हैं। सबमें वही प्रतिभाषित हो रहा है। माला की मणियों के मध्य पिरोये हुए धागे की तरह पृथक दीखने वाले प्राणी सहयोग सहकार से ही परस्पर एक सूत्र में बँधे हुए है।

इस बंधन में बँधे रहना ही श्रेयस्कर है। समय का परित्याग कर जब हम पृथक होते हैं, अपने अहंकार की पूर्ति के लिए अपना वर्चस्व प्रकट करने और अलग रहकर अधिक सुविधा प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, तब हम भारी भूल करते हैं। पाते कुछ नहीं खोते बहुत हैं। समग्रता के वैभव से लाभान्वित होने की सुविधा खो बैठते हैं और एकाकीपन के साथ मिलने वाली तुच्छता हर दृष्टि से अपर्याप्त सिद्ध होती है।

उँगली हाथ से अलग कट कर रहने की तैयारी करते समय यह सोचती है कि मैं क्यों सारे दिन हाथ का आदाव बजाऊँ, क्यों उसके इशारे पर नाचूँ। इसमें मेरा क्या लाभ? मेरे परिश्रम और वर्चस्व का लाभ मुझे क्यों न मिले? यह अलग रहकर ही हो सकता है। इसलिए अलग ही रहना चाहिए। अपने श्रम और उपार्जन का लाभ स्वयं ही उठाना चाहिए। यह सोचकर हाथ से कटकर अलग रहने वाली उँगली कुछ ही समय में देखती है कि उसका अनुमान गलत था। शरीर के साथ जुड़े रहने पर उसे जो जीवनदाता रक्त मिलता था वह मिलना बंद हो गया। उसके अभाव में वह सूखकर सड़ गई उस सड़े टुकड़े को छूने में भी लोगों ने परहेज किया जब कि हाथ के साथ जुड़े रहने पर वह भगवान का पूजन करती थी। हाथ मिलाते समय बड़ों के स्पर्श का आनंद लेती थी। महत्त्वपूर्ण ग्रंथ

लिखती थी। बड़े काम करने का श्रेय प्राप्त करती थी। पृथक होने के साथ-साथ वह सारी सुविधाएँ भी समाप्त हो गईं। उँगली नफे में नहीं घाटे में रही।

फूल का अपना अलग भी महत्त्व है, पर वह नहीं जो माला में गुँथे रहने पर होता है। एकाकी फूल किसी महापुरुष या देवता के गले में नहीं लिपट सकता। यह आकांक्षा तो सूत्रात्मा को आत्म-समर्पण कर माला में गुँथने के बाद ही पूरी हो सकती है। व्यक्तिवादी, एकाकी, स्वार्थी-संकीर्ण मनुष्य ही समूहगत चेतना से अपने को अलग रखने की सोच सकता है। अपने ही लाभ में निमग्न रह सकता है—दूसरों की उपेक्षा कर सकता है- उन्हें क्षति पहुँचा सकता है और इस प्रकार अपने उपार्जन को- शोषणात्मक उपलब्धियों को अपने लिए अधिक मात्रा में संग्रह कर सकता है। पर अंततः यह दृष्टिकोण अदूरदर्शितापूर्ण सिद्ध होता है। पृथकता के साथ जुड़ी हुई दुर्बलता उसे उन सब लाभों से वंचित कर देती है, जो समूह का अंग बनकर रहने से ही मिल सकते थे।

समुद्र की हर लहर अपना सरंजाम अलग खड़ा करे, तो वे तनिक से जल-कण के रूप में बिखर जाएँगी और ज्वार-भाटे के समय जो उनका गौरव देखकर लोग आश्चर्यचकित रह जाते थे, उससे उन्हें वंचित ही रहना पड़ेगा। नौकाओं को पलट देने की शक्ति-गरजती हुई ध्वनि फिर उनमें कहाँ रहेगी? किसी गड्ढे में पड़ी सूख जाएँगी। अपने स्वरूप को भी स्थिर न रख सकेंगी। सूखने के बाद उनका अस्तित्व उनकी सरसता की चर्चा का अस्तित्व ही मिटा देगा। वहाँ सूखा नमक भर श्मशान की राख की तरह पड़ा होगा? लहरें समुद्र से पृथक अपने अस्तित्व का स्वतंत्र निर्माण करने की एषणा, महत्त्वाकांक्षा के आवेश में भटकने का ही उपक्रम करती हैं। लाभ के लोभ में घाटा ही वरण करती हैं।

ईंटों के समन्वय से भवन बनते हैं। बूँदों के मिश्रण से बादल बनते हैं। परमाणुओं का सहयोग पदार्थ की रचना करता है। अवयवों का संगठित स्वरूप शरीर है। पुरजों की घनिष्ठता मशीन के रूप में परिणत होती है। पंचतत्त्वों से मिलकर यह विश्व सृजा है। पंच प्राण इस काया को जीवित रख रहे हैं। दलबद्ध योद्धा ही समर्थ सेना है। कर्मचारियों का गठित स्वरूप ही सरकार चलाता है। यदि इन संघटकों में पृथकतावादी प्रवृत्ति पनपे और डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग-अलग पकने लगे, तो जो कुछ महान दिखाई पड़ता है तुच्छता में बदल जाएगा।

तुच्छता अपना अस्तित्व तक बनाए रख सकने में असमर्थ है। प्रगति भी पारस्परिक सहयोग पर निर्भर है। दूसरों को पीछे छोड़कर एकाकी आगे बढ़ जाने की बात सोचने वाले—उन संकटों से अपरिचित रहते हैं, जो एकाकी के अस्तित्व को ही संकट में डाल सकते हैं।

उँगली हाथ से काटकर अलग से अपने बलबूते पर प्रगति करने की कल्पना भर कर सकती है। व्यावहारिक क्षेत्र में उतरने पर कड़ुई सचाई सामने आती है कि पृथकता लाभदायक दीखती भर है वस्तुतः लाभदायक तो सामूहिक ही है।

एक ही आत्मा सबमें समाया हुआ है। इस तथ्य को गंभीरता-पूर्वक समझना चाहिए और एक ही सूर्य को असंख्य लहरों पर चमकने के पीछे सन्निहित वस्तुस्थिति पर ध्यान देना चाहिए। हम सब परस्पर सघनतापूर्वक एकदूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। मानवीय प्रगति का गौरवशाली इतिहास उसकी सामूहिक प्रवृत्ति का ही सत्परिणाम है। बुद्धि का विकास भी सामूहिक चेतना के फलस्वरूप ही संभव हुआ है। बुद्धि ने सामूहिकता विकसित नहीं की, सहयोग की वृत्ति ने बुद्धि का विकास संभव किया है।

सामूहिकता का अर्थ है—सहयोग। यों उसका मखौल तो कागजी संस्थाएँ खड़ी करके भी लोग उड़ाते रहते हैं, उससे

विनोद कुतूहल भर होता है, कोई बड़ा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। शक्ति तो सहयोग के बल पर उत्पन्न होती है। बिजली के ठंढे–गरम तार अलग–अलग पड़े रहें तो वे व्यर्थ हैं, पर जब वे मिल जाते हैं तो 'करेंट' चालू हो जाता है। एकाकी व्यक्ति की अपनी थोड़ी–सी सीमा मर्यादा है, अपने बलबूते पर भी कुछ तो हो ही सकता है, पर वह होगा नगण्य ही। बड़ी संभावना तो सम्मिलित शक्ति के द्वारा ही मूर्तिमान होती है। एक–एक सैनिक अलग–अलग फिरे तो उनके छिटपुट कार्य एक सुगठित सैन्य टोली जैसे नहीं हो सकते हैं

विकास ही नहीं, आनंद का भी आधार

कई तरह की योग्यताएँ मिल–जुलकर अपूर्णता को पूर्ण करती हैं। परिवार को ही लें उसमें कई स्तर के—कई विशेषताओं के मनुष्य मिल–जुलकर रहते हैं, तो एक अनोखे आनंद का सृजन करते हैं। पति–पत्नी की योग्यताएँ भिन्न–भिन्न प्रकार की होती हैं, जब वे मिल–जुलकर एक हो जाते हैं, तो दोनों को ही लाभ होता है, दोनों ही अपने अभावों की पूर्ति करते हैं। वृद्धों का अनुभव, बालकों का विनोद,उपार्जनकर्त्ताओं का धन आदि मिलकर ऐसा संतुलन बनता है जिसमें परिवार के सभी सदस्यों का हितसाधन होता है। सभी एक–दूसरे का—सहयोग का लाभ उठाते हुए आनंद में रहते और उत्साह पाते हैं, यदि परिवार के सदस्य मात्र एक सराय में रहने वाले अजनबी मुसाफिरों की तरह निर्वाह करें, तो उनका असहयोग और मनोमालिन्य उस समूह को आनंद रहित, नीरस और समस्याओं से भरा हुआ बना देगा और उसका बिखर जाना ही श्रेयस्कर प्रतीत होगा।

पारस्परिक सहयोग की अविच्छिन्न प्रक्रिया विकास का ही नहीं आनंद का भी आधार है। भौतिक जगत में पग–पग पर इस तथ्य को अनुभव किया जा सकता है। परमाणु जिसे सबसे छोटी इकाई माना जाता है, एकाकी नहीं है, वरन न्यूट्रोन–प्रोटेन

आदि अपने सहयोगियों के आधार पर ही सृष्टि का क्रिया-कलाप संचालित किए रह सकने में समर्थ होता है। आकाश में ग्रह-नक्षत्र पारस्परिक आकर्षण में जकड़े रहने के कारण ही आकाश में अधर लटके हुए हैं। पंचतत्त्वों का सम्मिश्रण यदि न हो तो इस विश्व का अस्तित्व ही प्रकाश में न आए। हर कोई जानता है कि विवाह-बंधन के साथ कितने उत्तरदायित्व, बंधन और कर्त्तव्य जुड़े हुए हैं। उन्हें निभाते-निभाते आदमी का कचूमर निकल जाता है। नारी को प्रसव की विकट पीड़ा, शिशुपालन का कठिनतम कार्य और पति तथा ससुराल वालों को प्रसन्न रखने में लगभग आत्मसमर्पण जैसी तपस्या करनी पड़ती है। नर को भी कम भार वहन नहीं करना पड़ता। इन कठिनाइयों से परिचित होते हुए भी हर कोई विवाह की आशा लगाए बैठा रहता है, और वैसा अवसर आते ही हर्षोल्लास अनुभव करता है। जिनके दांपत्य जीवन में सघन आत्मीयता विकसित होती है, उन्हें वह पारस्परिक सान्निध्य स्वर्गोपम प्रतीत होता है। अगणित कठिनाइयों को वहन करते हुए भी हर घड़ी आनंद उमड़ता रहता है। यह सब देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि व्यक्तियों की आत्मिक घनिष्ठता कितनी तृप्ति और कितनी शांति प्रदान करती है?

पति-पत्नी का तो ऊपर उदाहरण मात्र दिया गया है। रिश्ते कुछ भी क्यों न हों, पुरुष-पुरुष और नारी-नारी के बीच भी ऐसी ही आंतरिक सघनता हो सकती है। उस मित्रता को किसी भी रिश्ते का नाम दिया जा सकता है। यही 'प्रेम' है। प्रकृति के अनुरूप व्यक्तियों से आरंभ होकर यह मनुष्य समाज—प्राणिमात्र और तदनन्तर विश्व-ब्रह्मांड में संव्याप्त जड़-चेतन में फैलता विकसित होता चला जाता है। आनंद का उद्‌भव और विस्तार यहीं से होता है। अंत:करण की कोमलता, मृदुलता, सरलता और सरसता ही वस्तुतः मानव जीवन की सबसे बड़ी संपदा है, जो स्नेहसिक्त है, जो प्रेमी है, जो

सहृदय और उदार है, उसे ही आत्मिक विभूतियों से सुसंपन्न सिद्धपुरुष कहना चाहिए। ऐसा व्यक्ति ही महामानव, देवदूत और दिव्य सत्ता संपन्न कहलाता है। आत्मा और परमात्मा का मिलन संयोग जिसे प्राप्त हो गया, समझना चाहिए कि उसने पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त कर लिया। अभाव तो एकाकीपन में ही है।

माता के उदर में रखे बिना, अपना रक्त, मांस दिए बिना, दूध पिलाए और पालन किए बिना भ्रूण की जीवन-प्रक्रिया गतिशील नहीं हो सकती। बालक भोजन, वस्त्र आदि की सुविधाएँ स्वयं उपार्जित नहीं कर सकता, उसे इसके लिए अभिभावकों की सहायता अभीष्ट होती है। छात्र अपने आप पढ़ तो सकता है; पर उसे पुस्तक, फीस आदि का खरचा पिता से और शिक्षण-सहयोग अध्यापक से प्राप्त करना पड़ता है। इसके बिना उसका शिक्षाक्रम मात्र एकाकी पुरुषार्थ से नहीं चल सकता। माता-पिता अपनी संतान का पालन-पोषण करते हैं, वे बच्चे बड़े हो जाने पर अपने बच्चों के लालन-पालन की जिम्मेदारी उठाते हैं। यही क्रमानुगत परंपरा चलती रहती है। अध्यात्म मार्ग की प्रगति प्रक्रिया भी इसी प्रकार चलती है। गुरु अपने शिष्य को अपनी तप पूँजी प्रदान करता है तदुपरांत शिष्य भी उसे अपने लिए दाबकर नहीं बैठ जाता, वरन उस परंपरा को अग्रगामी रखते हुए अपने छात्रों की सहायता करता है।

प्रकृति के विभिन्न क्रिया-कलापों को देखें तो, उनमें भी सहयोग और सहकार के आधार पर ही सामंजस्य स्थिर हुआ दिखाई देता है। समुद्र बादलों को देता है—बादल जमीन को देता है—जमीन नदियों के द्वारा उस जल को पुनः समुद्र में पहुँचा देती है। यही काम विश्व की स्थिरता और हरीतिमा—शांति और शीतलता का आधार है।

संघर्ष नहीं सहयोग ही आगे बढ़ाता है

वर्तमान मनुष्य की सभी आवश्यकताएँ-आकांक्षाएँ यह अपेक्षा करती हैं कि दूसरों का समुचित सहयोग प्राप्त हो। यदि वह उपलब्ध

न होगा तो कोई कितना ही बुद्धिमान या साधनसंपन्न क्यों न हो एक कोने में ही पड़ा सड़ता रहेगा। संघशक्ति को इस युग की सबसे बड़ी शक्ति माना गया है। पारस्परिक सहयोग के आधार पर मिल-जुलकर किए गए काम चाहे वैयक्तिक लाभ के हों अथवा सामूहिक लाभ के क्रमशः सफल होते चले जाएँगे।

इसके विपरीत जहाँ सहकारिता का—सहयोग सद्भाव का अभाव होगा, वहाँ प्रगति का चक्र उतना ही लड़खड़ाता जाएगा। दुर्भाग्य से इन दिनों यह समझा जाने लगा है कि संघर्ष के द्वारा ही अभीष्ट लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। उपयोगिता पर आधारित अपनी आवश्यकताओं—लक्ष्यों को प्राप्त करने की मान्यता के कारण संघर्ष को इन दिनों बहुत महत्त्व दिया जाता है। लड़-झगड़कर अपना अभीष्ट लाभ प्राप्त करने की बात सोची जाती है। गुंडागर्दी और आतंकवाद के आधार पर जल्दी अधिक लाभ मिलने की बात सूझती है और लड़ाकूपन का परिचय देकर शूरवीर कहलाने की इच्छा रहती है। यहाँ ध्यान रखने की बात इतनी ही है कि लड़ाई अपवाद है, आवश्यकता नहीं। उसकी उपयोगिता उतनी ही है जितनी कि आटे में नमक। अवांछनीय परिस्थितियों से निपटने के लिए उसे कभी-कभी ही काम में लाने की आवश्यकता पड़ती है और पड़नी भी चाहिए। यदि वह मात्रा बढ़ेगी तो यह संघर्षशीलता सामने वाले की अपेक्षा आक्रमणकर्त्ता का ही अधिक अहित करेगी।

अलबर्ट का मनोविज्ञान वस्तुतः मानवीय चेतना का मनोविज्ञान न होकर पाशविक वृत्तियों का तोड़ा-मरोड़ा इतिहास मात्र है। वह कहता है—"मनुष्य श्रेष्ठ पशु है (मैन इज दि सुपर एनिमल) अर्थात् मनुष्यों में जो पाशविक वृत्तियाँ हैं, वे कोई दोष-दुर्गुण नहीं वरन प्राकृतिक हैं।" और इस दृष्टि से उसकी जो भी स्वाभाविक आकांक्षाएँ हैं, वह अनुचित नहीं हैं, भले ही उसे उसके लिए अन्य प्राणियों का भी शोषण और उत्पीड़न करना

पड़ता है। जो जितना उपयोगी है, वह उतने ही अधिक अधिकारों का पात्र है भले ही इस स्वायत्तता का उपयोग वह अपने निजी सुख और स्वार्थों के लिए करता हो। उपयोगितावाद की यह संक्षिप्त व्याख्या हुई। आज यूरोप ही नहीं, संसार के प्रायः सभी देशों के पढ़े-लिखे लोग इसी मान्यता का आचरण व्यवहार कर रहे हैं, भले ही कहने-सुनने को उनके सिद्धांत चाहे कितने ही आदर्शवादी क्यों न हों !

उपयोगिता का समर्थन भी जिस ढंग से किया गया है, वह कम हास्यास्पद नहीं। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है इसलिए कम शक्ति वालों का शोषण कोई पाप नहीं, यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया हुई। जीव-हिंसा, पशु-उत्पीड़न और बढ़ता हुआ मांसाहार इसी दुष्ट सिद्धांत की देन है। इस मान्यता का प्रतिपादन है कि—"जो अधिक ताकतवर होता है, वही बंदर अपने समूह का मुखिया होता है।" खरगोश, हिरन, भेड़ और बकरियों की शक्ति न्यूनतम है उन्हें भेड़िये, बाघ, शेर और चीते आदि शक्तिशाली जंतु खा जाते हैं। यदि सहयोग, सादगी, सहानुभूति और सदाचार ईश्वरीय आदेश हुए होते तो शाकाहारी भेड़ें और बकरियाँ कमजोर न होतीं और न ही वह हिंसक जंतुओं द्वारा भक्षण कर ली जातीं। बड़ा वृक्ष अपने घेरे में दूसरे वृक्ष को पनपते नहीं देता। हर शक्तिशाली कम शक्ति वाले को खा जाता है, तो यह कोई दोष नहीं।

उपयोगितावाद सच पूछा जाये तो शक्तिवाद—"जिसकी लाठी उसकी भैंस " और सामंतवाद का ही दूसरा नाम है। इस सिद्धांत ने ही संसार को नास्तिक और स्वच्छंदतावादी बनाया है। भावनाओं का अंत इस सिद्धांत ने ही किया है। ठीक भी है जहाँ केवल शक्ति और उपयोगिता को ही महत्त्व देना हुआ, वहाँ परस्पर प्रेम, उदारता, सहयोग, सौजन्य, स्नेह, सामूहिकता का क्या मूल्य रहा? जहाँ उत्कृष्टता की भावनाएँ न होंगी, वहाँ

क्यों तो व्यवस्था रहेगी और क्यों विश्वशांति जिंदा रहेगी। आज उपर्युक्त प्रकार की मान्यताओं के कारण ही सारा विश्व अशांति-असंतोष, कलह-कलेश और शोषण के जाल में उलझता चला जा रहा है।

वस्तुत: संघर्ष एक दुर्घटना मात्र है। जो अनावश्यक विकृतियाँ अथवा अवांछनीय असावधानियाँ एकत्रित होने के फलस्वरूप ही प्रस्तुत होता है। अनौचित्य की प्रतिक्रिया को संघर्ष कहा जा सकता है। यह प्रकृति नहीं विकृति है। सृष्टि-संचालन प्रकृति करती है, विकृतियाँ तो केवल अवरोध उत्पन्न करती हैं। इसलिए उन्हें हटाने के लिए संघर्ष की आवश्यकता पड़ती है। इन्हें अपवाद कह सकते हैं। अवरोध सामान्य प्रवाह में व्यतिरेक उत्पन्न होने का काम है। व्यतिरेक सृजनात्मक उद्देश्य पूरा नहीं करते, उनसे सतर्कता की तीक्ष्णता भर पैदा होती है। शान चढ़ाने वाला पत्थर तलवार का प्रयोजन पूरा नहीं करता। तलवार तो मजबूत लोहे से बनती है। पत्थर तो धार तेज करने के काम भर आता है। संघर्ष को अधिक-से- अधिक धार तेज करने वाले पत्थर की संज्ञा दी जा सकती है।

सहयोग वह तथ्य है जिस पर प्रगति की समस्त संभावनाएँ आधारित हैं। मानव जाति की प्रगति का इतिहास यदि एक शब्द में कहना हो, तो उसे पारस्परिक सहयोग ही कह सकते हैं। दुर्बलकाय एक बंदर वंशीय नगण्य से प्राणी को सृष्टि का मुकुटमणि बना देने का श्रेय उसकी सहकारी मनोवृत्ति को ही दिया जा सकता है। यों लोगों को यह कहते भी सुना जाता है कि मनुष्य की बुद्धिमत्ता मननशीलता ने उसे प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाया है, पर यह बात सही नहीं है। तथ्य यह है कि सहयोग के आधार पर एकदूसरे के सहयोग के साथ घनिष्ठता स्थापित करते हुए पारस्परिक आदान-प्रदान का क्रम चला और उससे मस्तिष्कीय विकास का द्वार खुला।

बोलना, सोचना, पढ़ना, लिखना, कृषि, पशुपालन, अग्नि उपयोग उपकरण निर्माण, वस्त्राच्छादन आदि उपलब्धियों को प्रगति का आरंभिक चरण माना जाता है, इन्हीं सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मनुष्य ने आगे बढ़ने और ऊँचे उठने की राह पाई है। यह सब किसी एक मनुष्य के प्रयास का फल नहीं है। इसमें सहस्रों वर्ष लगे हैं और एक के अनुभव का दूसरे ने लाभ उठाया है। एक की उपलब्धियाँ दूसरे ने सीखी हैं और जो मार्ग मिला उस पर क्रमशः आगे कदम बढ़ाया है। आज हम जहाँ है, वहाँ तक पहुँचने की लंबी मंजिल इसी प्रकार पार हुई है।

परिवार-निर्माण की सारी आधारशिला पारस्परिक सहयोग पर रखी हुई। पति-पत्नी के बीच संतान, अभिभावक के बीच, भाई-बहन के बीच जो घनिष्ठता पाई जाती है, उसमें स्वार्थ साधन की मात्रा स्वल्प और एकदूसरे के साथ उदार सहयोग करने की मात्रा अधिक रहती है। यदि स्वार्थसिद्धि की ही प्रधानता रहती है तो वे संबंध क्षणिक रहते, तात्कालिक स्वार्थ सिद्धि होते ही बिखर जाते। निम्नकोटि के प्राणियों में ऐसा ही होता है। उनका पारिवारिक सहयोग अत्यंत स्वल्प रहता है। कामोन्माद के कारण नर-मादा कुछ ही क्षणों के लिए पति-पत्नी बनते हैं और वह आवेश उतरते ही दोनों अपरिचित बन जाते हैं। तनिक-सा स्वार्थ व्यवधान पड़ने पर इस क्षण के पति-पत्नी अगले ही क्षण एकदूसरे पर प्राणघातक आक्रमण करने में नहीं चूकते। संतान को मादा सँभालती है और वह भी तब तक जब तक वह अपने पैरों खड़ा नहीं हो जाता है। इसके बाद जब बच्चा स्वावलंबी हो जाता है, तो न माता को संतान से स्नेह रहता है और न संतान माता से कोई रिश्ता रखती है। पिता संतान-पालन में यत्किंचित् ही सहयोग देता है। माता को प्रकृति ने यह क्षणिक वात्सल्य इसलिए दिया है कि उस प्राणी का वंश नष्ट न होने पावे। विवेकपूर्ण सहयोग के आधार पर इन प्राणियों का परिवार नहीं बनता यदि

बना होता तो उसमें स्थिरता और सघनता का क्रम आगे भी चलता रहता। पर वैसा प्रायः देखने में नहीं आता। प्रायः इसलिए कहा गया है कि कुछ प्राणी सहयोग भावना से युक्त भी पाये जाते हैं और उससे अपनी सुरक्षा का लाभ लेते हैं किंतु इन्हें अपवाद ही कहना चाहिए।

मनुष्य की विशेषता उसकी सहयोग परक सत्प्रवृत्तियाँ ही हैं। उसी ने परिवार बनाए। उनमें सरसता और उदारता का समावेश किया। इससे कुटुंब का छोटा-बड़ा हर सदस्य लाभान्वित हुआ। यह प्रवृत्ति आगे चलकर सामाजिकता के रूप में विकसित हुई। समाज व्यवस्था—शासन-व्यवस्था की संरचना परिवार पद्धति की आचार संहिता के आधार पर ही बन जाती है। अर्थतंत्र का पूरा ढांचा सहकारिता है। वस्तुओं का उत्पादन और विनिमय-वितरण क्रम ही धीरे-धीरे वर्तमान अर्थव्यवस्था तक बढ़ता आया है। शिल्प, चिकित्सा शिक्षा, कला-कौशल और विज्ञान के चरण एकाएक नहीं उठे हैं। अमुक आविष्कार का श्रेय अमुक व्यक्ति को मिला, यह दूसरी बात है, पर वस्तुतः सफल आविष्कार की पृष्ठभूमि बहुत पहले से ही बनते लगी थी और उसमें से अनेकों का चिंतन एवं प्रयास जुड़ते हुए वह आधार बन सका था, जिसके सहारे उसे अंतिम रूप से उद्घोषित किया गया। धर्म, दर्शन, अध्यात्म जैसी उच्चस्तरीय भावनात्मक चेतनाएँ किसी एक व्यक्ति की कृति नहीं हैं। इनके क्रमिक विकास में अनेकानेक पीढ़ियों की सहस्राब्दियाँ नियोजित हुई हैं। यह सब सहयोग का ही परिणाम है।

संघर्ष और विघटन से अंततः विनाश

यदि पिछली पीढ़ी वाले अपनी ज्ञान संपदा अगली पीढ़ी को सौंप न जाते तो ज्ञान और सभ्यता का विकास वर्तमान शिखर को छू नहीं सकता था। क्योंकि संघर्ष दो व्यक्तियों—घटकों के आपसी संबंध-सूत्रों को तोड़ता और इन्हें दूर हटाता है। इस विघटन के पीछे

सर्वनाश ही जुड़ा रहता जबकि जीवन का उत्कर्ष और सौंदर्य का आधार संगठन-सहयोग की दिव्य प्रवृत्तियों से जुड़ा है। छोटे-छोटे जीवकोशों से मिलकर यह शरीर बना है और नगण्य जितने नन्हें परमाणुओं का एकत्रीकरण विभिन्न वस्तुओं की संरचना कर सकने में समर्थ हुआ है।

ब्रह्मांड के ग्रह-नक्षत्र और उपग्रह परस्पर मिल-जुलकर ही इस अनंत अंतरिक्ष में अपनी सत्ता बनाए हुए हैं। यदि उनका विघटन हो जाय—एकाकी रहने की स्थिति आ जाय तो पारस्परिक आदान-प्रदान के आधार पर खड़ा संसार का सारा ढांचा ही चरमरा जाय। फिर ग्रह-नक्षत्रों की वह स्थिति न रहेगी जो आज है। एकाकी भटकने वाले उल्का-पिंड अपनी सीमित शक्ति, सीमित स्थिति एवं सीमित कक्षा में किसी प्रकार जीवित रह भी सकें, तो भी उनकी सारी विशेषता तो नष्ट हो ही जायेगी। वे मृतक पिंड मात्र बनकर रह जाएँगे। पारस्परिक आकर्षण की सघन शृंखला में बँधकर ही वे अपनी धुरी और अपनी कक्षा में भ्रमण कर रहे हैं। उनकी विशेषताओं का विनिमय ही उनमें हलचलें बनाए हुए हैं, अन्यथा वे हर दृष्टि से स्तब्ध हो जाएँगे, उनका सारा पदार्थ अनंत अंतरिक्ष में धूलि बनकर बिखर जाएगा।

जीवाणुओं का विघटन ही मृत्यु है। जब तक शरीर के यह छोटे घटक मिल-जुलकर काम करते हैं—एकदूसरे के पूरक एवं सहयोगी बनकर रहते हैं, तभी तक जीवन की सत्ता है। विघटन आरंभ हो तो उसका परिणाम मृत्यु के रूप में सामने आ खड़ा होगा। पदार्थ कोई भी क्यों न हो परमाणुओं की अमुक स्थिति के ऊपर ही उनका अस्तित्व निर्भर है। संगठन क्रम में अव्यवस्था उत्पन्न होते ही वस्तुएँ सड़ने-टूटने या नष्ट होने लगती हैं, उनका स्वरूप देखते-देखते विकृत हो जाता है।

मनुष्य समाज की विकासोन्मुख स्थिति का एकमात्र आधार संगठन है। दांपत्य जीवन में दो व्यक्तियों का सघन सहयोग

कुटुंब का निर्माण करता है। मिल-जुलकर कई छोटे-बड़े व्यक्ति साथ-साथ रहें, इसी का नाम तो परिवार है। परिवारों का एकदूसरे के साथ सहयोग करना और पारस्परिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक आदान-प्रदान करना, यही है समाज में विविध-विधि क्रिया-कलापों के संचालन की धुरी। सारा अर्थतंत्र इसी आधार पर खड़ा हुआ है। उत्पादन, वितरण और विनिमय की पद्धति अपनाकर ही अनेकानेक उद्योगों का आविर्भाव हुआ है।

समाज के नियमोपनियम पालन करने की प्रवृत्ति ने स्थिरता एवं सुव्यवस्था को जन्म दिया है। भाषा, कला, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म, शिक्षा, शासन, न्याय, विज्ञान, शिल्प, उद्योग, चिकित्सा, यातायात आदि उस संसार को सुविकसित बनाने वाली स्थापनाएँ ही मानवी प्रगति की आधारशिलाएँ हैं। इनका आविष्कार और विकास तभी संभव हुआ जब मनुष्यों ने परस्पर मिल-जुलकर इस दिशा में अनवरत प्रयास करने का संकल्प किया और अपनी उपलब्धियों का लाभ अपने सहकारी तथा उत्तराधिकारी अन्यान्य व्यक्तियों के हाथ में थमाया। यदि यह संभव न होता तो जिस बुद्धिमत्ता पर गर्व किया जाता है, उसे प्राप्त कर सकना मनुष्य के लिए कदापि संभव न हुआ होता। अविकसित स्थिति में वन्य पशुओं की स्थिति में ही हमें रहना पड़ता, यदि सहकारिता की प्रवृत्ति का दैवी वरदान साथ लेकर मानव प्राणी जन्मा न होता।

जो जातियाँ, जो देश, जो समाज, जो परिवार, जो वर्ग जिस हद तक संगठित होते हैं; वे उसी अनुपात से समर्थ बनते, सफल होते और प्रगति करते देखे जाते हैं, प्रसन्न भी वे ही रहते हैं और श्रेय-सम्मान भी उन्हीं को मिलता है। एकाकी व्यक्ति कितना ही समर्थ या सुयोग्य क्यों न हो आखिर रहेगा तो एक ही। एक की क्षमता निश्चित रूप से स्वल्प होती है। मेल-मिलाप से बनने वाला समूह ही विशिष्ट एवं समर्थ शक्ति के रूप में उन्नतिशील

बनता है और बड़े प्रयोजनों को सिद्ध कर सकने में सफल होता है। इस तथ्य को मानवकाल के अद्यावधि इतिहास का कोई पृष्ठ उलटकर भली प्रकार जाना-समझा जा सकता है। उत्थान और पतन के अगणित घटनाक्रमों में अन्य तथ्य भी अपना कार्य करते दिखाई पड़ेंगे, पर सर्वोपरि आधार यही रहा होगा कि लोगों में सहयोग की प्रवृत्ति किस सीमा तक रही ? असहयोग की विषाक्तता पतन और पराजय के रूप में उभरी हुई कहीं भी देखी जा सकती है।

भगवान राम और कृष्ण ने अवतार लेकर लोक-शिक्षण के अनेकानेक आधार जनसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किए हैं। उनका प्राथमिक प्रतिपादन संगठन का ही है। भगवान राम ने लंका पर विजय की। उसमें प्रमुख योगदान रीछ-वानरों का उपलब्ध किया गया। इस क्रिया-कलाप में बताया गया कि न्याय पक्ष यदि संगठित हो जाय तो साधन और सामर्थ्य की मात्रा स्वल्प रहने पर भी विशालकाय विभीषिकाओं पर विजय प्राप्त की जा सकेगी। ठीक इसी प्रकार भगवान कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाते समय ग्वाल-बालों को लाठी लगाकर उस प्रयोजन में भाव भरा योगदान करने के लिए तैयार किया। महान प्रयोजन पूरा कर सकने में कोई अकेला व्यक्ति सफल नहीं हो सकता, उसके पीछे संगठित जनशक्ति होनी ही चाहिए। यही है गोवर्धन उठाने के प्रकरण का सारभूत निष्कर्ष।

पांडव पूर्ण समर्थ थे, कृष्ण भी कम बलवान नहीं थे। फिर भी महाभारत में कौरवों की विशाल सेना के समकक्ष प्रतिद्वंद्वी सेना जुटाने के लिए भगीरथ प्रयत्न किए गए संसार भर के भावनाशील लोगों को न्याय पक्ष का साथ देने के लिए सहमत किया गया। अनीति पक्ष के मुकाबले में लगभग उतनी ही बड़ी नीति समर्थक सेना खड़ी कर लेने से ही महाभारत संभव हुआ। यदि मात्र कृष्ण और पांडव लड़ने लगते तो संभव है कि युद्ध

जीत जाते, पर महाभारत के माध्यम से संगठन की शक्ति को समझने-समझाने का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन तो पूरा हो ही न पाता। असुर संहार से भी बढ़कर आवश्यकता देव संगठन की रहती है। उसके बिना शांति और प्रगति के स्वप्न साकार हो ही नहीं सकते।

विनोद भी एकांगी नहीं हो सकता, भावनात्मक उल्लास की अनुभूति भी छोटे वर्ग में सीमित रहकर नहीं हो सकती। रासलीला में गोप-गोपियों का सामूहिक ह्रास-विलास यह बताता है कि ममता और आत्मीयता का क्षेत्र अधिकाधिक विस्तृत होना चाहिए। "अधिक लोगों का अधिक लाभ" वाला सिद्धांत अध्यात्म, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी प्रधानता प्राप्त है। सब में अपने को और अपने में सबको देखने-समझने की दृष्टि रखकर मनुष्य का व्यक्तित्व अधिकाधिक विकसित एवं परिष्कृत बनता चला जाता है। आत्मविस्तार की चरम अवधि तक जा पहुँचने का नाम ही आत्मसाक्षात्कार, ईश्वर दर्शन, जीवन मुक्ति अथवा लक्ष्यप्राप्ति के आकर्षक नामों के अलंकारिक प्रतिपादनों के साथ प्रस्तुत किया गया है। संगठन का महत्त्व जितना अधिक और जितनी जल्दी समझा जा सके, उतना ही लाभ है। '**संघे शक्ति कलौयुगे**' सूत्र में सार रूप में यही बताया गया है कि इस युग में संसार का सबसे बड़ा, मनुष्य का सबसे प्रखर बल संगठन ही है। जो उसके लिए प्रयत्नशील रहेगा, वह सुखी बनेगा और जिसने इसकी अवज्ञा-उपेक्षा की उसे उसी की प्रतिगामिता चूर्ण-विचूर्ण करके रख देगी। संकीर्णता रत, विघटनवादी नर-पशुओं को सृष्टि के अवांछनीय तत्त्वों की तरह नियति का कोपभाजन ही बनना पड़ेगा। उन्हें पतन और पराभाव के गर्त में गिरकर नष्ट-भ्रष्ट ही होना पड़ेगा।

संगठन के शाश्वत सत्य को इन दिनों तो और भी अधिक प्राथमिकता मिलनी चाहिए। मानव समाज की प्रस्तुत विश्वव्यापी

जटिल समस्याओं एवं विभीषिकाओं को हल करने के लिए जिन साधनों या उपायों की खोज की जा रही है वे अपर्याप्त हैं। अभीष्ट सफलता तो केवल मानवी एकता की समस्या का हल करने से ही संभव होगी।

ज्ञान और विज्ञान की प्रगति ने दुनिया को इतना छोटा बना दिया है जितनी कि वह पहले कभी भी नहीं रही। अब विश्व के किसी भी कोने में घटित होने वाली घटनाएँ समस्त संसार को प्रभावित करती हैं। द्रुतगामी वाहनों ने वर्षों की पैदल यात्रा को कुछ घंटों की बनाकर रख दिया है। उद्योग, व्यवसाय, शिक्षा, कला, शिल्प आदि क्षेत्रों में देश एक दूसरे पर निर्भर होते चले जाते हैं। अरब देशों का तेल दूसरे देश न खरीदें अथवा बेचने वाले अपना विक्रय बंद कर दें तो इसका परिणाम दोनों ही पक्षों के लिए भयंकर होगा। यही बात अन्यान्य आदान-प्रदानों के संबंध में लागू होती है।

साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, अधिनायकवाद के दिन अब लद गए। जनचेतना इतनी प्रबल हो गई है कि निहित स्वार्थों द्वारा इन अनाचारों को थोपा जाना जनता द्वारा सहन नहीं किया जाएगा। इसी प्रकार अनीति के विरुद्ध भड़कने वाले विद्रोह को भी अब सैन्य बल से दबाया जा सकना संभव नहीं रहा। यह प्रयोग तभी तक सफल होते हैं, जब तक जन जागृति नहीं होती और जनशक्ति नहीं उभरती। इन दिनों पिछड़े हुए और समुन्नत वर्गों के बीच खाइयाँ इतनी चौड़ी हो गई हैं कि उनके गर्त में अब तक की मानवी प्रगति को डूबते देर नहीं लगेगी।

रक्त विकृत हो जाने पर शरीर में खाज-खुजली, फोड़े-फुंसी दाग-चिकत्ते ढेरों की संख्या में उगते हैं। एक-एक फुंसी की दवादारू करते रहने से कुछ काम नहीं चलता। एक के अच्छे होने से पहले ही दूसरी नयी फुंसियाँ उठ आती हैं। संसार के सामने प्रस्तुत अनेकानेक विभीषिकाओं को इन दिनों अलग-अलग उपायों से हल करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। स्वास्थ्य-सुधार, शिक्षा-संवर्द्धन, आजीविका

उत्पादन, शस्त्र, सैन्य आदि आधारों पर सर्वत्र ध्यान दिया जा रहा है, कई तरह की योजनाएँ सोची, बनाई और चलाई जा रही हैं, पर परिणाम नहीं के बराबर ही निकलता है। गुत्थियाँ जितनी सुलझती हैं उससे कहीं अधिक उलझ जाती हैं। विभीषकाएँ हलकी होने के बजाए और भी अधिक ऊपर उभर आती हैं। रक्त की विकृति का निराकरण किए बिना फुंसियों का उठना रुकेगा नहीं। विपत्तियों के मूल कारण, को देखे-सँभाले बिना विपत्तियाँ क्रमशः और भी अधिक सघन होती चली जाएँगी।

युग ने भौतिक क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति की है—यह एक सर्वमान्य तथ्य है। पर यह हुई ऐसी ही है जैसा कि एक हाथ या एक पैर का मोटा होना और दूसरे का पतला रह जाना। संगठन के आध्यात्म-तत्त्व को भी इसी क्रम से विकसित किया जाना चाहिए। आत्मीयता का—एकता का क्षेत्र इसी अनुपात से बढ़ाया जाना चाहिए। संतुलित प्रगति का लाभ उसी स्थिति में प्राप्त किया जा सकेगा।

जियो और जीने दो की प्रकृति प्रेरणा

मनुष्य की मूलसत्ता सहयोगपरायण और सृजनात्मक हैं इन्हीं दो मूल प्रवृत्तियों को प्रगति का आधार भूत कारण कह सकते हैं, अन्यथा शारीरिक दृष्टि से अन्य कितने ही प्राणियों की तुलना में उसका पिछड़ापन स्पष्ट है। मानसिक विकास सहकारिता का परिणाम है, अन्यथा चतुरता और कुशलता की दृष्टि से सहस्रों जातियों के प्राणी उससे आगे हैं और कितनी ही क्षमताओं में बाजी मारते हैं।

सहकारिता की प्रवृत्ति ने मिल-जुलकर कबीले बनाए, परिवार बसाए, समाज की संरचना की, उत्पादन बढ़ाया, अर्थतंत्र खड़ा किया और शासन की स्थापना की। सुरक्षा, कृषि, उद्योग, शिक्षा, संस्कार आदि कितनी ही गतिविधियों का सृजन-संचालन हुआ। ज्ञान-विज्ञान के अनेकों स्रोत उभरे, विनोद, कला, धर्म, अध्यात्म, भाषा साहित्य आदि को सहकारिता का ही अनुदान कहा जा सकता है।

सृजन की वैसी सुविकसित प्रवृत्ति और किसी प्राणी में नहीं पाई जाती जैसी कि मनुष्य में। अन्य प्राणी अपने निवास-स्थल का निर्माण करने भर की सीमा में इस प्रवृत्ति का यत्किंचित् दे पाते हैं, किंतु मनुष्य ने शरीर-सुविधा से आगे बढ़ कर अनेकों प्रकार के सृजन प्रस्तुत किए हैं। भाषा, साहित्य संगीत, कला, जैसे कार्य ऐसे नहीं है जिनके बिना उसका दैनिक निर्वाह संपन्न

न हो सके। विज्ञान के छोटे-बड़े आविष्कार, शोध प्रयोजनों में संलग्न रहकर उसने प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों को खोज निकाला है और थल से आगे बढ़कर जल में—आकाश में अपनी गति बनाई है। आदिमकाल की ऊबड़-खाबड़ धरती आज सुरम्य उद्यान की तरह सजी पड़ी है। प्रकृति के सौंदर्य को निखारने और उसे कामधेनु की तरह अनेकानेक अनुदान देने की वर्तमान स्थिति तक पहुँचाने में मानवी श्रम एवं कौशल का ही नियोजन हुआ है। उद्योग, व्यवसाय, समाज शासन, शिक्षा, कला, विज्ञान, संचार, वाहन जैसे अनेकों ऐसे क्षेत्र प्रगति के उच्च शिखर पर जा पहुँचे हैं, जिनका आदिम काल में अता-पता भी नहीं था। तब उनकी कल्पना तक संभव नहीं थी। यह सब मानवी सृजन शक्ति का चमत्कार ही कहा जा सकता है। इस तथ्य को समझने के लिए हमें मनुष्य शरीर की आंतरिक स्थिति पर भावनापूर्वक विचार करना चाहिए।

यह समझना भूल है कि व्यक्ति एकाकी भी पर्याप्त है। उसकी सारी विशेषतायें सहयोग-संगठन प्रक्रिया पर टिकी हुई हैं वस्तुतः वह अनेक अंग प्रत्यंगों का—कोशिकाओं और नाड़ी तंतुओं प्रभृति अनेक घटकों का समूह मात्र है। इनमें से एक भी पुरजा यदि अस्त-व्यस्त हो जाय, तो देखते-देखते सुदृढ़ प्रतीत होने वाला काय-कलेवर आधि-व्याधियों से ग्रस्त दीन-दुर्बल हो जाता है।

हमारे शरीर का प्रत्येक कोश एक स्वतंत्र मानव बीज है उसमें मनुष्य की सारी स्थूल और चेतन क्रियाएँ विद्यमान हैं। 'कोश' सांस लेता है, खाता है, पीता है, चलता है, डरता है, बचाव करता है, भागता है, मल विसर्जन करता है। 'अमीबा' एक कोशीय जीव है। उसका नाभिक जब दो भागों में बँट जाता है, तो वह दो अमीबा बन जाते हैं और दोनों अपनी-अपनी तरह से उक्त क्रियाएँ और अनुभूति करने लगते हैं। दो विभाज्य अमीबा, दो अलग गुणों वाले अमीबा

आत्मा (न्यूक्लियस) की दृष्टि से एक ही हैं। और उदाहरण के लिए जब दो अमीबा अपनी शक्ति में ह्रास अनुभव करते हैं तो वह एकदूसरे में मिलकर दो नाभिक (न्यूक्लियस) से एक नाभिक (न्यूक्लियस) वाला एक अमीबा बन जाते हैं, उस स्थिति में वह नवजात अमीबा की-सी शक्ति अनुभव करता है।

मनुष्य शरीर के विचित्र अवयव एक ही कोश 'स्पर्म' से पैदा होते हैं। स्थान की आवश्यकता के अनुरूप वे अपना आकार बदलकर मस्तिष्क, हृदय, जिगर, तिल्ली, नसें, मासपेशियाँ आदि बनाते हैं, पर उन्हें पता है कि विभिन्न स्थिति में काम की जिम्मेदारियाँ उठाते हुए भी वह सब एक ही पिता की संतान, भाई-भाई हैं और इसीलिए वे बराबर प्रेम, दया, सहयोग, सहानुभूति, श्रम, सामूहिकता आदि का व्यवहार करते रहते हैं इसी कारण शरीर स्थिर है।

जिस प्रकार बहुत-से कोशों (लगभग २ अरब) से मिलकर शरीर बना है, उसी प्रकार बहुत-से मनुष्यों से समाज, देश और विश्व बना। स्थान की स्थिति और जलवायु की भिन्नता के कारण वर्ण-भेद, स्वभाव-भेद होते हुए भी सब एक ही आत्मा के अंग हैं। यह मानकर जो शरीर की सहयोग भावना का पालन करते हैं, वह विश्व शांति बढ़ाने और ईश्वरीय मर्यादाओं का पालन करने का पुण्य करते हैं जो उससे विपरीत जड़वादी आचरण करते हैं, प्रकृति उन्हें दंड देती है। इसी सूक्ष्म न्याय प्रणाली पर सृष्टि की व्यवस्था अब तक विद्यमान है। यदि प्रेम, दया, उदारता, करुणा आदि सद्‌गुणों का अंत हो गया होता, तो सृष्टि का भी अंत हो गया होता।

मनुष्य शरीर मानवीय सद्‌गुणों का जिस रीति से परिपालन करता है, उसका वक्तव्य बड़ा रोचक है। आंतरिक क्रिया-शास्त्र (फिजियोलाजी) का गहन अध्ययन किया जाए तो पता चलेगा कि व्यक्ति और समाज को सुखी, संतुलित और सुव्यवस्थित बनाने वाले

जो भी गुण हैं, वह दूध से नवनीत काढ़ने की तरह से ही निकाले गए हैं।

उदाहरण के लिए सहयोग और सहानुभूति को ही ले लें। मनुष्य इतना कठोर हृदय हो सकता है कि अपने भाई, अपने पड़ोसी को कष्ट और पीड़ित अवस्था में देखकर भी चुप रह जाय, पर हमारे शरीर के सदस्य ऐसे हृदयहीन नहीं। परस्पर सहयोग और दूसरे के दुःख में हाथ बटाना ही उनका जीवन है। उदाहरणार्थ यदि एक गुरदा खराब हो जाए जैसा कि पथरी की बीमारी के समय होता है, तो अच्छा गुरदा दूसरे पीड़ित गुरदे का सारा कार्य-भार स्वयं सँभाल लेता है। जब तक वह ठीक न हो जाए स्वयं कष्ट सहेगा किंतु शरीर की साधारण क्रिया में कोई अंतर न आने देगा।

धमनियाँ (आर्टीज) पूरे शरीर को रक्त पहुँचाती है। बड़ों के साथ छोटे-छोटे लोग भी रहते हैं और तब उनका कोई विशेष महत्त्व जान नहीं पड़ता जैसे कि बड़ी धमनियों के साथ कुछ पतली धमनियाँ भी बनी रहती हैं। मनुष्य अपने छोटों को कष्ट दे सकता है, उनका शोषण और उत्पीड़न कर सकता है, पर धमनियों को पता है कि छोटे-से-छोटे जीव का भी कितना महत्त्व है ? इसलिए वह पतली धमनियों को भी पोषण देती रहती हैं। कभी कोई धमनी (आर्टीज) कट जाए तो उस स्थिति में पतली धमनियाँ (एनास्टोमोसेस) रक्त-प्रवाह के किनारे फूलकर आगे जोड़ देती है और रक्त परिभ्रमण क्रिया को तब तक साधे रहती हैं, जब तक घर अच्छा न हो जावे। इससे आगे वाला हिस्सा काम करता रहता है। यदि ऐसा न भी हो तो भी पतली धमनियाँ (एनास्टोमोसेस) आजीवन काम करती है।

'गमोनेक्टामी' के अनुसार यदि एक फेफड़ा काटकर निकाल देना पड़े तो दूसरा फेफड़ा साधारण स्थिति के सारे काम सँभाल लेता है। कई बार चमड़ी खुल जाने या चोट लग जाने के कारण कोई कीटाणु बाहर से आकर शरीर में घुस जाते है और लोगों

को सताना, काटना, लूटना, भक्षण करना प्रारंभ कर देते हैं, तब शुद्ध रक्ताणु दौड़ पड़ते हैं। (१) सूजन, (२) उस स्थान की चमड़ी का लाल हो जाना, (३) उस हिस्से का गर्म हो जाना, (४) तनाव बढ़ने से नस पर दबाब पड़नी, इससे पता चलता है कि अच्छे कोशों की सेना एकत्रित हो गई और बुराइयों का निष्कासन प्रारंभ हो गया।

कई बार रक्त में हानिकारक कीटाणु (इनफैसिलाई) पैदा हो जाते हैं, उससे रोग और विकृति पैदा होती है, उसके मुकाबले के लिए रक्त के श्वेत अणु (ह्वाइट ब्लड कारपेसल्स) पहुँचते हैं और शरीर-रक्षा का पूर्ण प्रयत्न करते हैं, पर बेचारों की शक्ति बुराई के मुकाबले कम हुई तो हार जाते हैं और मार दिए जाते हैं, किंतु त्याग और बलिदान की उपयोगिता समझने वाले ये अणु मरते-मरते भी कुछ-न-कुछ उपकार कर जाते हैं। मरे हुए श्वेत अणु प्रोटियोलाइटिक एंजाइम बन जाते हैं और (१) मरे हुए कोश (बैक्टीरिया) (२) एवं नष्ट हुए श्वेत अणु को घोलकर पीव बना देते हैं और उन्हें बाहर निकाल देते हैं इससे दरद कम हो जाता है।

समाज के सभी विचारशील लोग अपना ध्यान निजी हितों से हटाकर पूरी तरह समाज-सुधार और दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन में लगाते हुए चले जाएँ, तब समाज-शरीर उसी तरह अच्छा हो जाएगा जिस तरह शरीर के बुरे तत्त्व नष्ट कर देने पर टी० बी० के जीवाणु (बैक्टीरिया) जब एसिड फास्ट वैसिलाइ बन जाते हैं अर्थात एसिड्स भी उसका मुकाबला नहीं कर पाते, उस समय श्वेत अणुओं के ५ प्रकार के कोश (सेल्स) (१) पोलियोमोपर्स ७० से ७५ प्रतिशत (२) लिंफोसाइड्स २० से ३० प्रतिशत, (३) मोनोसाइड्स ५ से १० प्रतिशत, (४) ईजिनोफिल ५ से ६ प्रतिशत और (५) वेसोफिल्स आधा प्रतिशत तैयार होते हैं। लड़ाई के दिनों में जिस तरह सेनापति परस्पर ऐसी योजनाएँ बनाते हैं कि दुश्मन को हर तरह से मात भी दी जाए उसी तरह

शारीरिक बुराई के प्रति यह संघर्ष भी बड़ा प्रेरक होता है। सर्वप्रथम पोलियोमोपर्स आते हैं यदि वे अपने आप को मुकाबला करने में असमर्थ पाते हैं, तब लिंफोसाइड्स की टुकड़ी आगे बढ़कर दुश्मन को ललकारती है यदि तब भी टी० बी० के कीटाणु ससक्त हुए और लिंफोसाइड्स हार गये तो कई-कई इपिपलाइड्स कोश मिलकर दैत्याकार कोष (जाइंट सेल्स) बनाकर टी० बी० के कीटाणुओं को खा जाते हैं। शरीर की यह सुरक्षा-शक्ति आह्वान करती है कि जब कभी सामाजिक बुराइयों, पाप, अपराध अनैतिकता का कुछ ऐसा बाहुल्य हो जाए कि अग्रगण्य लोग भी उन्हें दूर न कर पाएँ तब संगठित प्रयत्नों द्वारा उन्हें नष्ट करने के लिए अपनी सारी शक्ति जुटा देनी चाहिए।

गुरदे के ऊपर एक सुप्रारीनल ग्रंथि (ग्लैंड) होती है, वह एड्रिनलीन एवं कार्टिको स्टैराइड्स निकालती है, जो शरीर को उसी प्रकार विषम स्थिति में कार्य करने की शक्ति देती है जैसे महापुरुष अपने अनुयायियों को देकर बुराइयों का अंत कराते हैं। उदाहरण के के लिए सामने कोई जंगली जानवर आ जाए तो एड्रिनिलीन रक्त चाप बढ़ाकर पैरों पर अधिक कार्य करने के लिए अधिक शक्ति दे देती है। उतनी शक्ति मस्तिष्क को मिलती है जिससे वह तुरंत कोई निर्णय ले सके। दौड़ते समय फेफड़े मांसपेशियों (मसल्स) को ऑक्सीजन की बहुत मात्रा अनुदान दे देते हैं दौड़कर आने के बाद काफी देर तक तेज हॉफी चलती रहती है—इस तरह फेफड़े अपनी खोई शक्ति पुनः अर्जित कर लेते हैं। संभवतः यह व्यवस्था भगवान ने इसलिए की कि मनुष्य यह जान ले कि औरों की भलाई में उत्सर्ग की हुई शक्ति और क्षमताएँ नष्ट नहीं होती, वरन् एक नई चेतना लेकर भगवान के वरदान की तरह पुनः मिलती हैं। मनुष्य अपने उपकार का पुण्यफल उसी प्रकार प्राप्त करता है जिस तरह स्वतंत्रता संग्राम के सिपाही अपने महत्त्वपूर्ण पदों का आनंद ले रहे हैं।

हमारे शरीर की व्यवस्था ऐसी ही है, जिसके संग्रह तो हैं पर एक अच्छे सहयोग के लिए त्याग और उदारतापूर्वक औरों की सुविधाएँ बढ़ाने के लिए हैं। (१) हर हड्डी के पोले भाग में, (२) प्लीहा (इसप्लीन), (३) जिगर (लीवर) में रक्त की मात्रा संग्रहीत रहती है। कभी चोट या घाव हो जाने पर यह संस्थान अविलंब रक्त पहुँचा कर उस स्थान को ठीक रखने और कमजोर न होने देने का प्रयत्न करते हैं। सामूहिकता की इसी भावना पर समाज की सुख-शांति अवलंबित है।

रक्त ही नहीं शरीर में चर्बी का भी स्टोर रहता है, चमड़ी और मांस के बीच चर्बी सुरक्षित रहती है। कई दिन तक भोजन न मिले तो भी सब अंग काम करते रहते हैं। चमड़ी पीली पड़ जाती है तो भी किसी की मृत्यु नहीं होने दी जाती। मृत्यु तो हृदय और मस्तिष्क के पोषण न मिलने से होती है, पर शरीर-संस्कृति जानती है कि भावनाशील और चरित्रवान लोगों के मिट जाने से समाज की सुख-शांति मिट जाती है इसीलिए यह अपनी सुरक्षित शक्ति उनके लिए खुशी-खुशी दान कर देती है।

यह भलाई की शक्तियाँ ही मनुष्य को जीवन-दान देती हैं। डॉक्टर जानते हैं कि शरीर में शक्ति ग्लूकोज के टूटने से प्रसारित होती है। जब कोई मांसपेशी या कोश (सेल) काम करता है तो ग्लूकोज लैक्टिक एसिड में परिवर्तित होकर शक्ति प्रदान करता है। जिगर का ग्लाइकोजन ग्लूकोज में परिवर्तित होता है। यह मांसपेशियों में ए० टी० पी० (एडिनो ट्राई फास्फेट) टूटकर ए० डी० पी० (एडिनो डाइ फास्फेट) एवं फास्फोरस में बदलता है। यह फास्फोरस क्रियेटिंग फास्फेट में मिलता है, जो अपनी शक्ति ग्लाइकोजन से लेता है। विश्राम के समय यही ग्लाइकोजन फिर जिगर में संग्रहित हो जाता है। सामान्य स्थिति में वह रक्त में भी संचारित होता रहता है। हमारे साधन, सत्कार्यों में निरंतर लगे रहें और आवश्यकता पड़े तो दूसरी बातों को

गौण मानकर भी अपनी तमाम शक्तियाँ, प्रतिभाएँ और योग्यताएँ सामाजिक भलाई के कार्यों में लग जाएँ, यह प्रेरणा हमें उक्त क्रिया से मिलती है।

मनुष्य शरीर एक समाज है। इस समाज में अनेक कोश होते हैं, हमारे समाज में अनेक मनुष्य हैं। हम मनुष्य समाज को किस तरह सुखी, शांत और समृद्ध रखें, किस तरह उसकी सुरक्षा रखें— इस सबकी जानकारी हमें शरीर क्रिया प्रणाली (फिजियोलाजी) से सीखनी पड़ेगी। हम उन नियमों पर चलकर ही मानवीय संस्कृति को जीवित रख सकते हैं।

न केवल मानव शरीर में वरन प्रकृति के हर क्षेत्र में यह संगठन और सहयोग की प्रक्रिया चल रही है। जड़ चेतन जगत इसी आधार पर परस्पर सुसंबद्ध है और अपने क्रम से आगे चल रहा है, यदि इस विधि-व्यवस्था में अंतर पड़ जाय, तो समझना चाहिए कि अगले ही क्षण घोर अव्यवस्था की अंधकारपूर्ण स्थिति सामने आकर खड़ी होने वाली है।

परमाणु के बारे में पूर्ण मान्यता यह थी कि वे एकाकी और अपने आप में पूर्ण हैं। पर पीछे पता चला कि परमाणु भी एक परिवार सत्ता की तरह है और उसके साथ भी एक के भीतर अनेक परतें जुड़ी हुई हैं।

सन् १८०३ में जान डाल्टन ने परमाणुवाद के सिद्धांत को जन्म दिया। उनका कहना था—"प्रत्येक पदार्थ सूक्ष्म कणों से मिलकर बना है, परमाणु अविभाज्य है और उसकी क्रिया से विभाजित नहीं हो सकता। सारे परमाणु आकार, रूप, भार आदि में समान होते हैं। लेकिन अलग-अलग तत्त्वों के परमाणुओं के गुण, आकार, रूप, मात्रा आदि अलग-अलग होते हैं। जो दो परमाणु मिलते हैं, तो वे पूर्ण संख्या में मिलते हैं, खंडों में नहीं। परमाणु के खंड नहीं होते। परमाणु न उत्पन्न किए जा सकते हैं और न वे नष्ट होते हैं।'

डाल्टन के परमाणु सिद्धांत अर्वाचीन शोधों ने बहुत अंशों में झुठला दिए हैं। डाल्टन की कल्पना थी कि परमाणु विभाजित नहीं हो सकते परंतु अब द्रव्य को परमाणुओं से भी सूक्ष्म कणों से बना हुआ ज्ञात किया गया है। परमाणु धन और ऋण विद्युत कणों के बने होते हैं जिन्हें प्रोटोन और इलेक्ट्रोन कहते हैं। अतः परमाणु इलेक्ट्रान और प्रोटोन आदि में विभक्त हो सकते हैं। यह भी आवश्यक नहीं कि किसी तत्त्व के समस्त परमाणु समान हों और यह भी आवश्यक नहीं कि दो विभिन्न तत्त्वों के परमाणु भिन्न-भिन्न ही हों, वे समान भी हो सकते हैं।

रेडियम और उसकी किरणों को आरंभ में स्व निर्भर माना गया था, पर अब उसके अंतर्गत भेद-प्रभेदों की परतें स्पष्ट होती चली जा रही हैं। आज की रेडियम संबंधी मान्यता में उसके तीन विभाजन हैं। (१) अल्फा (२) वीटा (३) गामा। किरणों की विविध प्रकृति में रेडियम विभक्त हैं। उनकी अपनी-अपनी विशेषता और क्षमता है, फिर भी वे तीनों परस्पर मिली-जुली ही रहती हैं और उनका समन्वय ही रेडियम का समग्र अस्तित्व विनिर्मित करता है।

धातु कण और प्राणियों के मूल उत्पादक तत्त्व भी अब इस रूप में देखे-समझे जाने लगे हैं कि वे न केवल जीवंत ही हैं, वरन परस्पर सहयोग भी करते हैं और मिल-जुलकर एक अस्तित्व का परिचय देते हैं। पदार्थों के समस्त रूपों में धातुओं के कण ही सबसे भारी होते हैं। तब भी उनमें जीवन विद्यमान है। भारतीय विज्ञान वेत्ता प्रो० जे० सी० बोस ने रायल इंस्टीट्यूशन के सामने यह प्रमाणित किया था कि मांसपेशियों की तरह ही धातुओं में भी हलके किस्म का जीवन विद्यमान है। उन्होंने विभिन्न वनस्पतियों में जीवन ही नहीं संवेदना भी सिद्ध की और प्रमाणित किया कि मिट्टी-पत्थर भी निर्जीव नहीं हैं। उर्वरा भूमि तो अनेक प्रकार के बैक्टीरियाओं जैसे सूक्ष्म कृमियों को जन्म देती रहती है और उनका पोषण करती

है, इन्हीं का अग्रिम विकास धरती पर उगी वनस्पतियों के रूप में दिखाई देता है।

रसायन क्षेत्र पर दृष्टिपात करें तो भी यही संगठन और सहयोग का परस्पर मिलन और समन्वय का सिद्धांत मूर्तिमान होता दीखता है।

दो तत्त्वों का सम्मिश्रण ऐसा भी ऐसा सकता है, जिसमें वे परस्पर पूरी तरह आत्मसात हो जाएँ और अपना-अपना अस्तित्व खोकर एक नए यौगिक के रूप में विकसित होने लगें।

यथा—मैग्नीशियम को हवा में जलाने से सफेद राख बनती है। इस राख को एक 'यौगिक' कह सकते हैं क्योंकि उसमें आक्सीजन और मैग्नीशियम का सम्मिश्रण पाया जाता है। इसी प्रकार पानी भी दो तत्त्वों से मिलकर बनता है। उसमें हाइड्रोजन और आक्सीजन का सम्मिश्रण है। कोयले को जलाने से कार्बन डाईआक्साइड बनता है। वह भी एक यौगिक है।

रासायनिक प्रीति उसे कहते हैं जिसमें दो पदार्थ मिलकर एक रस हो जाते हैं, यह भी एक यौगिक प्रक्रिया ही है। दो के मिलने से तीसरी वस्तु बनने की यह भी एक प्रक्रिया है।

यथा—लोहा और गंधक गर्म करने पर मिल जाते हैं और यौगिक बनाते हैं। गंधक और पारा मिला देने से भी ऐसा ही मिश्रण होता है। यह मिलन कई प्रकार का होता है। सोडियम के टुकड़े को पानी में डालने पर दोनों के कणों में पारस्परिक मिलन होता है और उसमें हाइड्रोजन गैस बनती है। नमक का घोल और सिलवर नाइट्रेट का घोल मिलाने के सिल्वर क्लोराइड बनता है। ताँबा और नाइट्रिक एसिड मिलाने से ताम्र नाइट्रेट बनना आदि।

मिश्रण उसे कहते हैं जिससे कुछ पदार्थ आपस में मिलकर ऐसे दीखते हैं मानो वे परस्पर घुल-मिल गए, पर वस्तुतः ऐसा नहीं होता, उनमें पृथकता बनी रहती है। कोई अपना अस्तित्व नहीं खोता,

और न उनके मिलने से कोई तीसरी चीज बनती है। आवश्यकतानुसार उन्हें पृथक भी किया जा सकता है। बाहर से एकता भीतर से पृथकता की यह मिश्रण पद्धति रसायन क्षेत्र में आसानी से देखी जा सकती है।

नमक, मिट्टी और लोहे के बुरादे को मिलाकर एक मिश्रण बनाया जा सकता है। खड़िया, कोयला, शकर आदि मिलाकर एक चीज बन सकती है। अलकोहल जल और नारियल का तेल मिलाकर एक नई चीज का अस्तित्व सामने आता है। गंधक, शोरा और कोयला मिलाने से बारूद बनती है। यह मिश्रण प्रयोगशाला में आसानी से पृथक किए जा सकते हैं।

जीव रसायन (डी० एन० ए०) भी न्यूक्लियो टाइप वर्ग के चार अन्य रसायनों का सम्मिश्रण है। इनके नाम हैं—(१) एडिनिन (२) गुआनिन (३) लाइमीन (४) साइटोसीन। न्यूक्लिक एसिड के विभिन्न खंडों को जो विभिन्न गुणों को निर्धारित करते हैं जीन कहते हैं। रासायनिक दृष्टि से प्रत्येक 'जीन' न्यूक्लिक एसिड का बना होता है।

राइजोबियम जाति के जीवाणु बैक्टीरिया और दलहन जाति के पौधों ने परस्पर समझौता कर लिया है। दलहन पौधों की जड़ें इन जीवाणुओं को रहने के लिए स्थान और शरण देती हैं यह जीवाणु वायुमंडल से नेत्रजन (नाइट्रोजन) खींचकर पौधों को देते हैं जिससे पौधों को पोषण मिलता है। दोनों बढ़ते और विकसित होते रहते हैं। प्रकृति की इस परोपकारी वृत्ति को (१) सिंबोयोसिस कहते हैं।

किसी गाँव में आग लग गई। सब लोग सकुशल निकल गए पर एक अंधा, एक लँगड़ा व्यक्ति दो ही रह गए। वे भाग नहीं सकते थे। अंधा देख नहीं सकता था, लँगड़ा चल नहीं सकता था। दोनों ने ऊपर के सिद्धांत को अपनाया। अंधे ने लँगड़े को कंधे पर बैठा लिया। लँगड़ा अंधे को रास्ता बताने लगा और

परस्पर सहयोग के आधार पर वह दोनों भी सकुशल बाहर निकल आए। एकदूसरे के हित में परस्पर सहयोगी होने के इस सिद्धांत को मनुष्य ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू कर लिया होता तो, छोटी-छोटी क्षमताओं के लोग भी संतोष और सुविधा का जीवन जीते हुए अंधे और लँगड़े की तरह सांसारिक कठिनाइयों से पार हो जाते।

सेलूलाइटिक फफूँद की दो जातियों में एक जाति बलवान होती है, दूसरी निर्बल । जो निर्बल होते हैं, वह, अपने आहार सेलूलोज को तोड़-फोड़ नहीं सकते। अब शक्तिशाली फफूँद सेलूलोज को तोड़ना प्रारंभ करते हैं और उसमें कार्बनिक अम्ल पैदा कर देते हैं तो यह कमजोर सेलूलाइटिक फफूँद के लिए आहार का काम देता है। यदि बलवान फफूँद इन निर्बलों को सहारा न देते तो उनकी एक जाति कभी की नष्ट हो गई होती।

परिवार में बच्चे, बूढ़े, विधवाएँ और कई लोग बीमार तथा अपाहिज भी होते हैं समाज में कई निर्धन, रोगी, अभावग्रस्त लोग होते हैं उनके प्रति साधन संपन्न और सशक्त लोग कमजोर और निर्बलों की असुविधायें और अभाव दूर करने में थोड़ी-सी भी शक्ति खरच कर सके होते तो आज समाज में कहीं भी विषमता न होती। प्रकृति का यह (२) "प्रोटो कोआपरेशन" सिद्धांत ही विश्वशांति का आधार बन सकता है।

जीव जगत में (३) कमेन्सलिज्म का एक सिद्धांत भी जियो और जीने दो की समाजवादी व्यवस्था का आदर्श उदाहरण है। कुछ खास किस्म के सूक्ष्म जीवाणुओं में अपने विकास के साधनों का ज्ञान नहीं होता। उन्हें अपनी आजीविका और विकास के लिए साधनों की वैसे ही आवश्यकता पड़ती है जैसे समाज के अनेक पिछड़े, पद दलित, अपंग, आदिवासी, स्त्रियों व हरिजनों को शिक्षा, ज्ञान-संबर्द्धन, स्वास्थ्य, उद्यम-उद्योग आदि के साधनों की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता को दूसरे

महत्त्वपूर्ण जीवाणु 'विटामिन' और 'एमिनो एसिड' बनाकर पूरा कर देते हैं। शिक्षित, संपन्न और प्रतिभावान लोगों ने पिछड़े समाज को ऊपर उठाने के लिए इस सिद्धांत के आधार पर अपने साधनों का एक अंश भी जुटा दिया होता तो आज संसार में कोई भी पिछड़ा और पददलित नहीं होता। सब लोग सुखी होते। 'एरोब्ज' और 'एनारोब्ज' जीवाणु इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि मनुष्य को अपने ही नहीं दूसरों के विकास का भी सदैव ध्यान रखना चाहिए।

गैसों की विधि-व्यवस्था को गौर से देखा जाय, तो उनमें से पारस्परिक सहयोग के कारण उत्पन्न होने वाली क्षमता और विशेषता का परिचय पग-पग पर प्राप्त होता है। नाइट्रोजन जीवधारियों और पौधों के शरीर की वृद्धि के लिए अत्यंत आवश्यक तत्त्व है। वह वायुमंडल में प्रचुर मात्रा में विद्यमान भी है, पर आश्चर्य इस बात का है कि शरीर या पौधे हवा से नाइट्रोजन को सीधा ग्रहण नहीं कर सकते।

वायुमंडल का नाइट्रोजन विद्युत प्रभाव से ऑक्सीजन में मिलकर नाइट्रिक आक्साइड बनाता है। जो मेघ जल से मिलकर नाइट्रिक अम्ल बनाती है और पृथ्वी तल पर गिरकर धरती के अन्य लवणों से क्रियान्वित होकर नाइट्रेट में परिणत होती है। इतनी लम्बी प्रक्रिया में से गुजरने के बाद तब कहीं नाइट्रोजन इस योग्य बनती है कि उसे प्राणियों के शरीर और पौधे सोखकर आत्मासात कर सकें।

पौधों के नाइट्रेट लवणों में प्रोटीन बनाते हैं। वनस्पति, उसकी पत्ती, फल-फूल खाकर उसके उस तत्त्व को प्राणी अपने शरीर में ग्रहण करते हैं। जानवर मल और मूत्र के द्वारा बहुत-सा नाइट्रोजन धरती को लौटा देते हैं। जो उनके शरीर में बचा रहता है, वह मरने के बाद सड़ने या जलने पर फिर लौटकर धरती को या वायुमंडल को मिल जाता है। इस प्रकार

वायुमंडल का नाइट्रोजन जल, वनस्पति, प्राणी, धरती और फिर वायुमंडल में भ्रमण करके एक सुव्यवस्थित चक्र की तरह घूमता रहता है।

आकाश स्थित नाइट्रोजन वायु का बादल बिजली की सहायता से वर्षा के साथ खाद बनकर धरती पर आना, पृथ्वी के संयोग से उसका वनस्पति के रूप में उगना, वनस्पतियों का प्राणियों द्वारा भक्षण किया जाना और उसका प्रोटीन जैसे उपयोगी पदार्थों में परिवर्तित होना, मल-मूत्र द्वारा उसका धरती पर आना, वस्तुओं की सड़न से उसका फिर आकाश में लौटना, यह एक ऐसा चक्र है जो निरंतर चलता रहता है, इसे जीवन चक्र भी कह सकते हैं। इसे धरती पर सजीवता बनाए रखने में नाइट्रोजन की महान भूमिका भी कह सकते हैं।

इसके अतिरिक्त पौधों को नाइट्रोजन प्राप्त होने का एक और भी तरीका है। सेम, बटला, मटर जैसी जाति के पौधों की पतली जड़ों में अत्यंत सूक्ष्म बैक्टीरिया कीड़े रहते हैं, उनमें यह विशेषता है कि वे वायुमंडल से सीधे नाइट्रोजन लेते हैं और उसे नाइट्रेट बना देते हैं, जिन्हें आसानी से आत्मसात लेते हैं।

सभी प्राकृतिक तत्त्व इस ईश्वरीय नियम का पालन करते हैं तो मनुष्य को भी क्यों न करना चाहिए? नाइट्रोजन गैस प्रकृति का एक ऐसा ही तत्त्व है, जो मनुष्य को एक महत्त्वपूर्ण पाठ पढ़ाता है। उससे मनुष्य को यह शिक्षा मिलती है कि बड़ी शक्तियों को सदैव क्रियाशील रहकर संसार की भलाई में जुटे रहना चाहिये।

नाइट्रोजन एक गैस है, अनादिकाल से आकाश में व्याप्त इस प्राकृतिक तत्त्व ने अपने लिए वायुमंडल में ८० प्रतिशत स्थान बनाया है। शेष २० प्रतिशत आक्सीजन और दूसरी गैसें हैं। प्रकृति और परमात्मा की तरह दोनों गैसें इस प्रकार घुली-मिली हैं कि उन्हें बिना किसी उत्प्रेरक (कैटालिसिस) से अलग करना कठिन हो जाता है, जिस प्रकार पति-पत्नी दो भिन्न रूप होते हुए भी उद्‌देश्य और

विचारों से परस्पर घुले-मिले रहते हैं, पर यदि कपट, ईर्ष्या या द्वेष का बीज बीच में आ गया तो दोनों में जो अभिन्नता थी, वह नष्ट हो जाती है। दोष-दुर्गण ही हैं, जो मानवीय जीवन के सुख, प्रेम और विश्वास में खाई पैदा कर देते हैं।

नाइट्रोजन और ऑक्सीजन को वर्षाकाल में विद्युत अलग करती है। बादल आए, हवा चली, उनमें रगड़ से विद्युत चमकी और उसने उत्प्रेरक (कैटालिसिस) का काम किया। जिस प्रकार परमात्मा की इच्छा से यह पंचतत्त्वों वाला भौतिक शरीर अस्तित्व में आ जाता है और फिर अपने विकास के प्रयत्न में जुट जाता है, उसी प्रकार बिजली चमकने से ऑक्सीजन और नाइट्रोजन दोनों में प्रतिक्रिया होती है और नाइट्रोजन पंचोषित (नाइट्रोजन पेंटा ऑक्साइड) बन जाता है और इस प्रकार नाइट्रोजन अपनी जीवन यात्रा के लिए सुचारु रूप से निकल पड़ता है।

मनुष्य की उत्पत्ति भी इस प्रकार ईश्वरीय इच्छा या संयोग है। हमें मालूम नहीं कि नाइट्रोजन में क्या किसी प्रकार का जीवन है? पर मनुष्य के संबंध में ऐसा कोई धोखा नहीं। उसे जो शक्तियाँ, सुविधाएँ और सामर्थ्य उपलब्ध है, उन्हें देखकर सहज ही में विश्वास हो जाता है कि उसका जन्म किसी विशेष उद्देश्य के लिए हुआ है।

बिना कोई लक्ष्य बनाए मनुष्य अंतरिक्ष कीट (क्षुद्र-ग्रहों) की तरह इधर-उधर भटकता, आप भी मरता और दूसरों के लिए भी संकट उत्पन्न करता है। योजनाबद्ध जीवन जीने वाले मनुष्य यदि अपना आध्यात्मिक लक्ष्य न भी पूरा कर सकें तो भी वह बिना औरों को हानि पहुँचाए अपनी उन्नति करते रहते हैं, अपनी उन्नति का लाभ वह कई समान विचारधारा वाले मित्रों को भी देते रहते हैं।

पंचोषित नाइट्रोजन (नाइट्रोजन पेंटा ऑक्साइड) जल में मिलकर शोरे का तेजाब (नाइट्रिक एसिड) बन जाता है। जिन्हें संसार को

कुछ सेवा करनी होती है, वह परिस्थितियों से डरते या संघर्ष में शक्ति नहीं गँवाते, वरन जो भी उन्हें मिलता उसी से मिलकर उसकी कोई न कोई अच्छाई ग्रहण कर अपनी शक्ति बढ़ाते और अपना उद्‌देश्य पूरा करते रहते हैं। गुणी मनुष्य को पाने की सभी की इच्छा की तरह इस शोरे के तेजाब (नाइट्रिक एसिड) को पृथ्वी सोख लेती है। पृथ्वी कोई एक वस्तु, पदार्थ या धातु नहीं, वह भी तो अनेक खनिज, लवण और धातुओं का सम्मिश्रण है।

शोरे का तेजाब पृथ्वी में पाए जाने वाले लवण (साल्ट्स)से प्रतिक्रिया (रि-एक्शन) करता, उससे नाइट्रेट लवण बन जाता है। नाइट्रोजन का इतना सब परिश्रम पृथ्वी की सतह तक पहुँचने के लिए होता है। महापुरुष संसार का उपकार करने के लिए छोटे-से-छोटे व्यक्ति का भी विश्वास प्राप्त करते हैं और तब उनके अंतःकरण में प्रविष्ट होकर अपनी विशेषताओं के बीज प्रकट कर उसके विकास में सहायक होते हैं, यह अनुभूति नाइट्रोजन की इस अवस्था से सहज ही में मिलती है।

पौधों की जड़ें इस समय पास होती हैं, वह नाइट्रोजन लवण से नाइट्रोजन उसी तरह खींच लेती हैं, जिस प्रकार किसी महापुरुष के संपर्क में आने से चतुर लोग उनके स्वभाव की बारीकियों को पढ़कर अपने जीवन में धारण कर लेते हैं और अपनी योग्यता, महत्ता एवं उपयोगिता बढ़ा लेते हैं। जड़ें नाइट्रेट लवण से खींचे हुए नाइट्रोजन का लाभ अपनी मोटाई बढ़ाने में नहीं करतीं, वरन संत पुरुष जिस तरह धन, संपत्ति, तप और योग्यता का लाभ सारे शरीर को देते रहते हैं, उसी प्रकार जड़ें नाइट्रोजन को सारे वृक्ष—तने, डालों, पत्तियों और फल-फूल में पहुँचाती रहती हैं।

मनुष्य मर जाते हैं पर उनके कारण शरीर कभी नष्ट नहीं होते, सच पूछा जाय तो महापुरुषों के शरीर हाड़-मांस के नहीं, गुणों के बने होते है और जन्म-जन्मांतरों तक बरतते रहते हैं।

नाइट्रोजन जिसे पत्तियों, फल-फूलों, टहनियों ने सोख लिया था, उनके सूख जाने पर भी विद्यमान रहता है। पत्ते आदि सूखकर पृथ्वी में गिर जाते हैं या हरे होने पर जानवरों द्वारा चर लिए जाते हैं। दूसरी अवस्था में वह शरीर के उपयुक्त न होने पर मल-मूत्र के द्वारा अमोनिया के रूप में बाहर निकल आता है। मृत्यु हो जाने पर भी वह जानवरों के शरीर से बाहर आ जाता है, पहली अवस्था में भी वह पृथ्वी में आ जाता है और इधर-उधर बिखर जाता है।

कुसमय में लोग कई बार ऐसे हतवीर्य हो जाते हैं कि अपने हाथ-पाँव भी डुलाना बंद कर देते हैं और विनाश को निमंत्रण दे लेते हैं, पर नाइट्रोजन ऐसी अवस्था में भी धैर्य नहीं खोता। बाहर से जान पड़ता है कि पत्ते सूख गए और नाइट्रोजन समाप्त हो गया, लेकिन ऐसा नहीं होता, वह इस विषम स्थिति में अपने सहारे की खोज करते रहते हैं। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' वाली कहावत चरितार्थ होती है, वर्षा का पानी गिरा और नाइट्रोसीफाइंग बैक्टीरिया नामक जीवाणु ने पत्तों को सड़ाकर नाइट्रोजन को अमोनियम नाइट्रेट या नाइट्रेट लवणों में बदल दिया। उपकारी मनुष्य को एक-एक अनेक सहयोगियों को तरह एक दूसरा बैक्टीरिया जिसे डिनाइट्रीफाइंग कहते हैं, ये भेंट होती है और वह अमोनियम नाइट्रेट या नाइट्रेट लवणों को नाइट्रोजन में बदल देता है और इस तरह वह नाइट्रोजन पुनः वातावरण (एटमास्फियर) में विलीन हो जाता है।

नाइट्रोजन मरुतदेव की त्रिगुणात्मक शक्ति का एक अंश है। हमारे वेदों और उपनिषदों में मरुत देवता के गुणों की प्रशंसा की गई है, उसका कारण यही है कि उनकी यह शक्ति ही पृथ्वी पर वृक्ष और वनस्पति को जीवन देती रहती है। कालचक्र रुक सकता है पर वह शक्ति अपने नियत व्रत का उल्लंघन यों नहीं करती कि उससे सारे प्राणि-जगत का पोषण और शक्ति मिलती है।

ब्रह्मांड की एक विलक्षण शक्ति के रूप में नाइट्रोजन का अवतरण और एक जीवन व्रत बनाकर प्राणिमात्र के कल्याण के लिए आवागमन के चक्र में पड़े रहने से मनुष्य को बड़ी प्रेरणाएँ मिलती हैं। हम भी किसी अज्ञात शक्ति की इच्छा और अंश से जीवन धारण कर रहे हैं, पर हम न तो मनुष्य शरीर में आने के उद्देश्य को पहचानते हैं, न उसे पूरा करते हैं, होना यह चाहिए था, सांसारिक प्रपंच में उतना फँसते है, जितना आत्म-विकास के लिए आवश्यक होता है। सेवा औरों का उत्थान और आत्म प्रगति के लिए सहयोगी तत्त्वों का अर्जन नाइट्रोजन की तरह मनुष्य को भी इन तीनों में समरूप बने रहकर अपना लक्ष्य पूरा करना चाहिए, पर ऐसा होता कहाँ है, हम तो अपने ही स्वार्थों की, इंद्रिय-सुखों की अधोगामी मृग-मरीचिका में भटकते रहते हैं।

सह अस्तित्व का—परस्पर सहयोग का यह अनोखा उदाहरण है। कीड़े पौधों को खुराक देते हैं और पौधे कीड़ों को। इस प्रकार दोनों एकदूसरे के लिए जीवन के साधन प्रदान करते रहते हैं।

पृथ्वी में भी कुछ ऐसे सूक्ष्म कीड़े रहते हैं जो पदार्थों में से नाइट्रोजन बनाते हैं और वायुमंडल से जितना अंश धरती निवासियों का प्राप्त होता है, उसे वापस करते रहते हैं।

वायुमंडल में नाइट्रोजन का बहुत बड़ा भंडार है। धरती की सतह से दो सौ मील तक की ऊँचाई में जो वायु का आवरण है उसमें ७८ प्रतिशत नाइट्रोजन गैस का भाग है। जिस तरह ऑक्सीजन श्वासनलिका से फेफड़े तक जाकर रक्त की अशुद्धि दूर कर उसे शुद्ध बनाती है । उसी तरह नाइट्रोजन मनुष्यों, पेड़-पौधों तथा अन्य जीवधारियों के भोजन की व्यवस्था जुटाती है। जैसे आटा ऐसे ही कच्चा नहीं खाया जा सकता, उसकी रोटी बनाकर खाने से काम चलता है, उसी तरह नाइट्रोजन सीधा भोजन नहीं है, उसके कारण

प्रोटीन तथा दूसरे पदार्थ बनते हैं और वे हमारे आहार का प्रयोजन पूरा करके जीवनरक्षक ही सिद्ध होते हैं।

चाहे जनजीवन की बात हो चाहे प्रकृतिगत जड़ समझे जाने वाले पदार्थों की, सबके मूल में एक ही प्रधान तथ्य काम करता दिखाई पड़ेगा संगठन और सहयोग। जहाँ इस प्रक्रिया को जितना अधिक अपनाया जायेगा, वहाँ उतना ही अधिक उत्कर्ष दिखाई पड़ेगा, जहाँ उसमें न्यूनता पड़ेगी, वहीं अवांछनीय एवं असुखकर परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी।

सहयोग और सहकार पर जीवित संसार

उपयोगितावाद (यूटिलिटेरियनिज्म) सिद्धांत के विश्वविख्यात प्रवर्तक जान स्टुअर्ट मिल ने अपने सिद्धांत की व्याख्या करते हुए लिखा है, 'संसार में सबको सुख या आनंद की खोज है। सुख जीवन का लक्ष्य है और यह स्वाभाविक है कि मनुष्य आजीवन उसकी खोज करे। कई बार ऐसी परिस्थिति आती है, जब हमें एक सुख दूसरे से अधिक अच्छा लगे तो हमारे लिए वही इष्ट हो जाता है, भले ही उसको प्राप्त करने में अशांति का सामना करना पड़े। मनुष्य सुख चाहता है, वस्तुएँ चूँकि उन सुखों की माध्यम हैं, इसलिए हम वस्तुओं का संग्रह करते समय भी केवल सुखप्राप्ति का प्रयत्न करते हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि आनंद मनुष्य जीवन में प्रमुख है, आचरण अप्रमुख।'

अर्थात यदि मांस खाने से सुख की वृद्धि हो सकती है तो माँस खाना बुरा नहीं। यदि काम वासना की अधिक तृप्ति के लिए सामाजिक मर्यादाएँ तोड़ी जा सकती हैं तो वैसा करना पाप नहीं। धन अधिक और अधिक सुख देने में सहायक है, इसलिए अधिक-से-अधिक धन कमाने में यदि प्रत्यक्ष किसी पर दबाव न पड़ता हो तो वैसा किया जा सकता है अर्थात झूठ बोलकर, कम तौलकर मिलावट आदि जितने भी व्यापार के भ्रष्ट नियम हैं, वह पाप नहीं है। यदि हमारे सुख की मात्रा उससे बढ़ती हो। बड़ी बलवान शक्तियों द्वारा कमजोर छोटी शक्तियों का शोषण इस सिद्धांत का ही समर्थित व्यवहार है। जॉन स्टुअर्ट और इसके सब अनुयायी इसके लिए

प्रकृति को प्रत्यक्ष स्वायंभुव उदाहरण देते हैं और कहते हैं, बड़ी मछली छोटी को खाकर अपनी शक्ति बढ़ाती है। बड़ा वृक्ष छोटे वृक्ष की भी खुराक हड़प कर लेता है आदि। इन सब बातों को देखकर मनुष्य के लिए भी उपयोगितावाद के सिद्धांत का समर्थन होता है।

जहाँ तक सुख की चाह का प्रश्न है, जॉन स्टुअर्ट के सिद्धांत का कोई भी विचारशील व्यक्ति खंडन नहीं करेगा।

आनंद-वृद्धि के लिए उपयोगितावादी सिद्धांत हमें निरंतर भौतिकता की ओर अग्रसर करते हैं और हमारी आध्यात्मिक आवश्यकताओं को उस तरह भुलावा देते हैं, जैसे—रेगिस्तान के शुतुरमुर्ग शिकारी को देखकर अपना मुख बालू में छिपाकर अपनी सुरक्षा अनुभव करते हैं। आज के संसार में बढ़ रही अशांति और असुरक्षा इस सिद्धांत की ही देन है।

प्रकृति में बड़ी शक्तियों द्वारा छोटी शक्तियों के शोषण का सिद्धांत अपवाद मात्र है। अधिकांश संसार तो सहयोग और सामूहिकता के सिद्धांत पर जीवित है। उस क्षण की कल्पना करें, जब सारे संसार के लोग बुद्धि भ्रष्ट हो जाएँ और परस्पर शोषण पर उतर आएँ तो सृष्टि का विनाश एक क्षण में हो जाए। हम प्रकृति को सूक्ष्मता से देखें तो पाएँगे कि उसका अंतर्जीवन कितना करुणशील है। छोटे-छोटे जीव-जंतु, वृक्ष, वनस्पतियाँ भी किस प्रकार परस्पर सहयोग और मैत्री का जीवन यापन कर रहे हैं। मानवीय सभ्यता तो जीवित ही इसीलिए है कि इतने भौतिक विकास के बाद भी हम मनुष्य, मनुष्य के प्रति प्रेम, दया, करुणा, उदारता, सहयोग और सामूहिकता के संबंध को तोड़ नहीं सकते।

गाँवों के किसानों से कोई पूछे कि वे एक खेत में कई फसलें मिलाकर क्यों बोते हैं ? तो उपयोगितावाद के सिद्धांत का खंडन करने वाले तथ्य ही सामने आएँगे। ज्वार और अरहर साथ-साथ बोई जाती हैं। मूँग, उड़द और लोबिया आदि दालें भी ज्वार के साथ बोई जाती

हैं। ज्वार का पौधा बड़ा होता है, यदि उपयोगितावाद प्रकृतिगत या ईश्वरीय नियम होता, तो वह इन दालों को पनपने न देता। होता यह है कि दालों को ज्वार के पौधों से बढ़ने और हृष्ट-पुष्ट होने में सहायता मिलती है। उधर ज्वार को नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, तो वह काम अरहर पूरा करती है। वह वायुमंडल से नाइट्रोजन खींच कर कुछ अपने लिए रख लेती है, शेष ज्वार को दे देती है, जिससे वह बढ़ती और अच्छा दाना पैदा करने की शक्ति ग्रहण करती रहती है।

पान की बेल आम के वृक्षों के सहारे ही बड़े अच्छे ढंग से बढ़ती है। उन्हें किसी घने वृक्ष की छाया न मिले तो बेचारी का जीवन ही संकट में पड़ जाए। यहाँ बड़ा छोटे के हितों की रक्षा करता है। अमर बेल बेचारी जड़हीन होने से स्वयं सीधे आहार नहीं ले सकती, इसके लिए उसे बड़े वृक्षों का ही संरक्षण मिलता है। जिसके पास भी साधन और संपत्तियाँ हैं, वे उसे अपनी ही न समझकर समस्त वसुधा को समझकर आवश्यकतानुसार उदारतापूर्वक अल्प विकसितों को बाँटते रहें, तो विषमता उत्पन्न ही क्यों हो?

बड़ी शक्तियाँ छोटी शक्तियों का शोषण करें, यह प्राकृतिक नियम नहीं। प्रकृति आश्रित को जीवन देने और उसके विकास में सहायता करने का कार्य करती है। 'छोटी पीपल' महत्त्वपूर्ण ओषधि है, वह अपना विकास किसी घने छायादार वृक्ष के नीचे ही कर सकती है। इलायची नारियल के वृक्ष की छाया में बढ़ती है। बड़ा पेड़ अपने नीचे के छोटे पेड़ों को खा ही जाय, यह सार्वभौम नियम नहीं है।

यहाँ कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं, सब अपूर्ण हैं। डॉक्टर ओषधिशास्त्र का पंडित हो सकता है, कानूनशास्त्र का नहीं। इंजीनियर मशीनों का ज्ञाता होकर भी व्यापारशास्त्र की दृष्टि से निरा बालक रहता है। वैज्ञानिक के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह अपने ही बच्चों का शिक्षण आप कर लें उसके लिए, उसे प्रशिक्षित अध्यापकों

वाले कॉलेज का ही सहयोग लेना पड़ेगा। अपूर्णताओं वाले संसार में यदि उपयोगितावाद को खुला समर्थन दिया जाने लगे, तो सबके सब अपने को उपयोगी मानकर छल-कपट, शोषण और अत्याचार करने लगें, ऐसी स्थिति में अशिक्षित किंतु स्वस्थ और बलिष्ठ भी अपने शरीर की उपयोगिता सिद्ध करना चाहेगा। वह चोरी, डकैती और दूसरी तरह के अपराध करेगा, क्योंकि उसे न्याय और नियंत्रण में रखने वाली बौद्धिक शक्ति स्वयं पंगु हो चुकी होती है। यदि सब उदारतापूर्वक एक दूसरे से सहयोग का मार्ग अपना लें तो हर कोई स्वल्प साधनों में भी आनंद की उपलब्धि कर ले। आज की जो गड़बड़ स्थिति है, उसका दोष इस उपयोगितावाद को ही दिया जा सकता है।

समुद्र में शंख पाया जाता है। उसका कीड़ा निकल जाता है, तब 'आर्थोपोडा वर्ग का हरमिट क्रेब' नामक जल-जंतु उसमें जा बैठता है। सोचता तो वह ये था कि यहाँ वह सुरक्षित रहेगा, किंतु यहाँ भी उसे शत्रु का भय बना रहता है। मछलियाँ उसे कभी भी पकड़कर खा जाती हैं। यदि उपयोगितावाद का सिद्धांत ही सत्य और व्यावहारिक रहा होता तो इस कीड़े की वंशावली ही समाप्त हो गई होती।

पर प्रकृति ने उसे सहयोग के लिए प्रेरित किया। वहीं पर 'फाइसेलिया' नामक एक जानवर पड़ा होता है। बेचारा अपने आहार के लिए चल-फिर नहीं सकता। आर्थोपोडा उसे अपने शंख की पीठ पर बैठा लेता है और उसे यहाँ से वहाँ घुमाता रहता है। प्रत्युपकार में फाइसेलिया उस आर्थोपोडा की रक्षा का भार स्वयं वहन करता है। फाइसेलिया अपने शरीर से काई की तरह का एक दुर्गंधित पदार्थ निकालता रहता है, फलस्वरूप वह जहाँ भी रहता है, मछलियाँ भयभीत होकर पास नहीं आतीं और यही द्रव छोटे-छोटे जंतुओं के मारने के काम आता है और इससे फाइसेलिया तथा हरमिट क्रेब दोनों को भोजन भी मिल जाता है

और इस तरह आर्थोपोड़ा का जीवन सुरक्षित बना रहता है। इससे यह मालूम होता है कि प्रकृति ने यदि सहयोग और सद्भाव की प्रेरणा अंतरंग से न दी होती तो सृष्टि के संपूर्ण प्राणियों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता।

एककोशीय जीव को प्रोटोजोआ कहते हैं। इनके हाथ-पैर, मुख आदि कुछ नहीं होते। एक नाभिक (न्यूक्लियस) होता है और उसके आस-पास 'साइटोप्लाज्म'। अमीबा एक ऐसा ही प्रोटोजीव है। इसी की जाति का 'पैरामीसियम' नामक जीव जब थक जाते हैं और जीवनशक्ति बहुत कम पड़ती जाती है या बुढ़ापा अनुभव करते हैं, तब दो पैरामीसियम मिलकर एकदूसरे से साइटोप्लाज्म (एक प्रकार का द्रव-सा होता है, जिसमें पानी के अतिरिक्त गैसें, खनिज, धातुएँ, लवण, पोटेशियम, फास्फोरस आदि विभिन्न तत्त्व होते हैं) में अदल-बदल लेते हैं, इससे उनमें पुनः एक नई शक्ति आ जाती है।

एक समय था जबकि अंजीर केवल अर्जेंटाइना में पाई जाती थी। वहाँ से स्माइराना नामक अंजीर के कुछ पौधे कैलीफोर्निया (अमेरिका) में लाए गए। इन पौधों को उगाने के लिए बहुतेरे प्रयत्न किए गए, अच्छी खाद दी गई, पानी दिया गया, मिट्टी दी गई पर सब कुछ निरर्थक गया। अंजीर का पौधा बढ़ तो गया, उसमें फूल भी आ गए, किंतु बाँझ। उन फूलों पर फल उतरे ही नहीं। वैज्ञानिकों ने परागण (पोलीनेशन) के सारे प्रयत्न कर लिए पर उनकी एक न चली।

अंत में अमेरिका के एक वैज्ञानिक उस देश गए, जहाँ से अंजीर का पौधा आया था। पौधे के विकास का सूक्ष्म अध्ययन करते समय उन्होंने देखा कि एक विशेष जाति की बर्र (मक्खी) ही जब इन पौधों पर आती है, तभी 'पोलीनेशन' (पौधों में संयोग) की क्रिया संपन्न होती है। इन बर्रों को तब कैलीफोर्नियां लाया गया। जैसे ही वह बर्रें इन पौधों के फूलों पर बैठीं 'पोलीनेशन' क्रिया प्रारंभ हो गई

और बांझ अंजीर के पौधे खूब फलने लगे। यह बर्र भी इस फूल से अपने लिए पर्याप्त पराग प्राप्त करती रहती है। उसका अधिकांश पोषण इन अंजीर के ही फूलों से होता है।

'पोलीनेशन' के लिए सहयोग की क्रिया और भी कई पौधों पर विचित्र ढंग से होती है। मक्खियाँ, तितिलियाँ तो चाहे जिस पौधे को इस क्रिया में एक फूल का पराग दूसरे फूल में पहुँचाकर करती रहती है, किंतु अमेरिका में एक ऐसा जंगली पौधा पाया जाता है, जो 'प्रोन्यूबा' नामक एक सफेद पतंगे के बिना गर्भ ही धारण (फर्टलाइज) नहीं करता।

प्रेम, सहानुभूति और दया एकदूसरे की आत्मिक आवश्यकताओं को पहचान कर सहयोग देने, सहायता देने की पद्धति के पर्याय हैं। उन आवश्यकताओं को अंतरंग में प्रवेश करके ही जाना जा सकता है। मादा प्रोन्यूबा जब यह पौधाखिलता है तो फूल पर जा बैठती है और अपनी टांगों की सहायता से पराग को इकट्ठा करके छोटी गेंद का आकार बना देती है और उसे अपने पैरों में ही चिपका लेती है। फिर वह वहाँ उड़ती है और दूसरे फूल पर जा बैठती है और गोलाकार बनाए· हुए उस पराग को फूल में छोड़ देती है जिससे वह फूल 'फर्टलाइज' हो जाता है। प्रोन्यूबा उसी फल की 'ओवरी' (गर्भाशय) में बैठकर फिर यह पतंगा अपने अंडे दे देती है। यह अंडे काफी बड़े होने तक उसी फूल में पलते रहते हैं। न तो इस फूल के बिना पतंगे का वंश-विकास संभव है न इस पतंगे के बिना फूल का। यह तो उदाहरण मात्र है, सच बात तो यह है कि सारा संसार ही प्रेम और सहयोग के द्वारा विकसित हो रहा है। इन गुणों के बिना सृष्टि का चलना एक पल को भी संभव नहीं।

'जूक्लोरेली' एक प्रकार वनस्पति है, जो अन्य वनस्पतियों के समान खुले आकाश में जीवित नहीं रह पाती। उसकी कोमल-कोशाएँ धूप, शीत और वर्षा के तीव्र आघात सहन करने

में वैसे ही असमर्थ होती है, जैसे कोमल बच्चे, बीमार और अपाहिज व्यक्ति।

हाइड्रा एक छोटा-सा जीव है, उसे भोजन की आवश्यकता होती है, पर अपने लिए उपयुक्त भोजन की प्राप्ति कर पाना उसके लिये कठिन होता है। प्रकृति ने उसकी परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी बनाई हैं।

एक वनस्पति दूसरा जीव दोनों इस संसार में दिखाई न देते, यदि सचमुच संसार में 'समर्थ का जीवन' का ही सिद्धांत काम कर रहा होता। माना कि जीवमात्र के सुधार के लिए प्रकृति को कठोर और दंडात्मक प्रक्रिया का भी कभी-कभी संचालन करना पड़ता है पर वह कोमल और संवेदनशील अधिक है। अपने प्रत्येक अणु-अणु को वह परस्पर प्रेम, सहयोग और सहानुभूतिपूर्वक जीने की प्रेरणा देती रहती है। उसका उदारहण जब इन छोटे जीवों और वनस्पतियों पर भी देखने को मिलता है, तब विश्वास हो जाता है कि निर्माण ही विश्व का सत्य है ध्वंस नहीं, सहयोग ही सर्वकल्याण का सर्वोत्तम सिद्धांत है, उपयोगितावाद नहीं।

उपर्युक्त परिस्थितियों में 'जूक्लोरेली' पौधा 'हाइड्रा' जीव के शरीर में रहने लगता है, वहाँ वह अपने आप को सुरक्षित अनुभव करता है। पर चूंकि वह वनस्पति है, इसलिए उसे भोजन प्रकाश-संश्लेषण (फोटो सिंथेसिस अर्थात सूर्य प्रकाश में होने वाली एक रासायनिक प्रक्रिया) प्रक्रिया से मिल सकता है, उसके लिए कार्बन डाइआक्साइड गैस मिलना आवश्यक हो जाता है, ताकि आवश्यक क्लोरोफिल (हरा पदार्थ) तैयार करके वह अपने संपूर्ण अंगों का पोषण कर सके । इस कार्बन डाइआक्साइड की आवश्यकता को हाइड्रा अपनी छोड़ी हुई साँस से पूरी कर देता है और जूक्लोरेली द्वारा छोड़ी हुई ऑक्सीजन आप ग्रहण कर लेता है। इस तरह परस्पर सहयोग से दोनों प्रसन्नतापूर्वक जीते हैं। फोटो सिंथेसिस क्रिया से हाइड्रा को भी शक्ति मिलती रहती है।

जीव और वनस्पति में सहयोग को और अच्छी तरह समझना हो तो हमें कृषिविज्ञान की 'लैग्युमिनौसी' अर्थात फलियों वाले पौधों जैसे चना, मटर, सेम, सोयाबीन आदि की रचना, जीवन धारण और विकास पद्धति का अध्ययन करना पड़ेगा। इन पौधों की जड़ों में बड़ी-बड़ी गाँठें होती हैं। स्थूल आँख से तो नहीं, पर किसी गाँठ को चीड़कर सूक्ष्मदर्शी यंत्र (माइक्रोस्कोप) से देखें, तो उसके अंदर अरबों की संख्या में जीवाणु (बैक्टीरिया) हलचल करते हुए दिखाई देंगे। प्रकृति ने सूक्ष्म जीवों की सुरक्षा के कितने सुदृढ़ खोल तैयार किए हैं, यह देखकर आश्चर्य होता है पर यह सब उसने केवल सुरक्षा के लिए ही नहीं, वरन विश्व में मैत्री और सहयोगी प्रवृत्ति के विकास के लिए किया लगता है, क्योंकि इन गाँठों में रहने से जीवाणु सुरक्षित पड़े रहते हों, इतना ही नहीं, जीवाणु और ये दोनों एकदूसरे के विकास में पति पत्नी की तरह भाई-भाई और पड़ोसी-पड़ोसी के समान महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं।

पौधों के अच्छे विकास के लिए आवश्यक है कि मिट्टी से नाइट्रोजन की पर्याप्त मात्रा मिले। जड़ें हलकी होने के कारण यह काम नहीं कर सकतीं, इसलिए मात्र नाइट्रोजन चूसकर देने का किराया लेकर ये पौधे उन जीवाणुओं को आजीवन अपने भीतर सुरक्षित स्थान दिये रहते हैं।

हमारे समाज में बहुत लोग ऐसे हैं, जो शिक्षा, ज्ञान उपार्जन, शरीर, साधन आदि की दृष्टि से अत्यंत अविकसित स्थिति में पड़े हैं। प्रकृति का यह सहयोग हमें सिखाता और पाठ पढ़ाता है कि हमें उन सबके प्रति भी श्रद्धा रखनी चाहिए उनके उत्थान, भरण-पोषण और संरक्षण के लिए जो भी संभव सहयोग कर सकते हैं, वह करना चाहिए। सहयोग के सिद्धांत से समाज के नकारा लोग भी पल जाते हैं और समर्थ लोगों के विकास और सफलता की संभावनाएँ बदलती हैं।

जीव-जंतु वृक्ष वनस्पतियों में

यह तो छोटे एककोशीय सूक्ष्मदर्शी यंत्र से दिखाई देने वाले जीवों की बात हुई। वह जीव-जंतुओं तथा वृक्ष-वनस्पतियों में भी सहयोग-सहकार की—अक्षम, असमर्थ और कष्ट पीड़ितों का सहयोग करने की प्रवृत्ति पायी जाती है, तभी तो पृथ्वी पर कमजोर-से-कमजोर और क्षुद्र-से-क्षुद्र प्राणियों का अस्तित्व विद्यमान है।

मध्य यूरोप की नदियों में एक 'रोडियश' नामक मछली पाई जाती है। यह मछली इतनी कमजोर और क्षुद्र होती है कि इसके लिए खुले स्थान पर अंडे देना एक प्रकार की आफत है, जो भी जीव उधर से गुजरता है, वही उन्हें साफ कर जाता है।

कुछ ऐसे वृक्ष होते हैं, जो अपनी सीमा में छोटे-छोटे पौधों को पनपाते हैं। सारे जंगल में दो-चार ऐसे हिंसक-जंतु भी होते हैं, जो छोटे-छोटे जीव-जंतुओं को खा डालते हैं, अफ्रीका के कुछ पौधे ऐसे धोखेबाज होते हैं कि उनमें कोई चिड़िया आश्रय के लिए आई और उन्होंने अपने नुकीले पत्तों से उसे जकड़कर खून पी लिया । समुद्र में एक-दो मछलियाँ, एक-दो जंतु जैसे मगर और घड़ियाल ऐसे भी होते हैं, जो किसी का पनपना देख नहीं सकते, अपने से कम शक्ति का जो भी दाँव में आ गया, उसी को चट कर दिया।

विविधा-विपुला प्रकृति में ऐसे दुष्ट-प्रकृति के जीव-जंतु हैं तो, पर उनकी संख्या, उनका औसत थोड़ा है, पर मनुष्य जाति के दृष्टि-दोष को क्या कहा जाए, जो इन दो-चार उदाहरणों को लेकर 'उपयोगितावाद' जैसा मूर्खतापूर्ण सिद्धांत ही तैयार कर दिया। ढूँढ़ें तो अधिकतर संसार 'आओ हम सब मिलकर जिएँ के सिद्धांत पर फल-फूल रहा है। यदि छोटों को मारकर खा जाने वाली बात ही सत्य रही होती तो कुछ ही शताब्दियों में विश्व की आबादी दो गुनी से भी अधिक न हो गई होती।'

प्रस्तुत प्रसंग यह बताता है कि संसार के अबुद्धिमान जीव-जंतु भी परस्पर मिलकर रहना कल्याणकारक मानते हैं। जहाँ

रोडियश मछली पाई जाती है, वहीं एक 'सीप' नामक जीव भी पाया जाता है। सीप के शरीर को कछुए की-सी तरह का एक मोटा और कड़ा आवरण घेरकर रखता है, जिससे वह अपने अंडों की सेवा नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में रोडियश मछली और सीप दोनों मिलते हैं और 'आओ हम-आप दोनों मिलकर जिएँ' के अनुसार समझौता कर लेते हैं।

रोडियश अपने अंडे सीप के खेल में प्रविष्ट कर देती है, इसी समय सीप अंडे देती है, वह रोडियश अपने शरीर से चिपका लेती हैं। रोडियश घूम-घूमकर अपने लिए भोजन इकट्ठा करती है, उसी के दाने-चारे पर सीप के बच्चे पल जाते हैं, जबकि उसके अपने बच्चों को सीप पाल देती हैं। लगता है, विभिन्न जातियों में सहयोग और संगठन की आचार संहिता भारतीय समाजशास्त्रियों ने प्रकृति की इस मूक भाषा को पढ़कर ही तैयार की थी। आज भी उसका मूल्य और महत्त्व सामाजिक जीवन में उतना ही है। इस सिद्धांत के आधार पर ही संसार सुखी रह सकता है, शोषण, छल, कपट, बेईमानी, अनीति और मिलावट पर नहीं। वह यदि दूसरे के साथ यह दुष्टता करेगा, तो शेष वातावरण उसके लिए भी वैसा ही तैयार मिलेगा।

'एलगी' जाति के 'प्रोटोकोकश' पौधे और फसंग जाति के 'एस्कोमाइसिटीज' वर्ग के पौधे भी आपस में मिलकर एक-दूसरे को बहुत सुंदर ढंग से पोषण की वस्तुएँ प्रदान करते हैं। हमें, शिक्षक ज्ञान देता है, शिक्षा देता है पर हम अपनी अनपढ़ धर्मपत्नी या अशिक्षित पड़ोसी के लिए एक घंटा भी नहीं निकाल सकते। हमारे माता-पिता जब हम बच्चे थे, तब आधे पेट, गीले वस्त्रों में सोकर हमारी परवरिश करते थे, पर आज जब वे वृद्ध हो गए, तब हम उनकी कितनी अवहेलना करते हैं। नाई, धोबी, तेली, कुम्हार, दुकानदार, रेल वाला, यों कहिए कि सारा संसार अपनी सेवाएँ हमें देने को तत्पर हैं, तब यदि हम दूसरों को धोखा देने की बात

सोचें, कृतघ्नता दिखाएँ, तो ऐसे व्यक्ति से नीच और घृणित कौन होगा ?

पौधों का क्या अस्तित्व, पर वे मनुष्य जाति से अच्छे हैं। ऊपर के दोनों पौधे मिलकर एक चपटे आकार का ढाँचा बना लेते हैं, उसे 'वनस्पति विज्ञान' में 'लाइकेन' कहते हैं। इसमें से होकर एलगी की जड़ें फंगस के पास पहुँचती है और फंगस की एलगी के पास। एलगी के पास जिस तत्त्व की कमी होती है, उसे फंगस पूरा कर देता है और फंगस की कमी को एलगी। दोनों के आदान-प्रदान में यह थैला भी विकसित होता रहता है। औरों के कल्याण में अपना कल्याण, सबकी भलाई में अपनी भलाई अनुभव करने वाले समाज इसी तरह विकास और वृद्धि करते हैं और अपने साथ उन छोटे-छोटे दीन-हीन व्यक्तियों को भी पार कर ले जाते हैं, जो सहयोग के अभाव में दबे पड़े पिसते रहते हैं।

'स्कॉरपियन' मछली अपने शरीर के ऊपर छोटे-छोटे हाइड्रा जाति के जीवों को फलने-फूलने देती हैं,सतह पर वे छोटे-छोटे जंतु हजारों की संख्या में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पूरी तरह में फैले रहते हैं। देखने में हर रंग के होते हैं, मछली के शरीर के ऊपर इनका पूरी तरह पोषण होता रहता है।

हर कोई लाभान्वित

बेहरिंग के काफिले ध्रुवप्रदेश में चला करते हैं। प्राकृतिक जीवन के अभ्यस्त ये काफिले वहाँ की सारी कठिनाइयों का मुकाबला बड़ी आसानी से कर लेते हैं, किंतु जो सबसे बड़े आश्चर्य की बात है, वह यह कि वह काफिले वहाँ की छोटी-छोटी लोमड़ियों से मात खा जाते हैं। उनकी इस आपबीती को सुप्रसिद्ध लेखक स्टेलर ने बेहरिंग के काफिलों का युद्ध कहा है और बताया है कि प्रारंभ में ये काफिले जिस स्थान पर डेरा डालते, वहाँ की लोमड़ियाँ आतीं और उनका खाना चुरा ले जातीं, इसलिए खाने को पत्थरों से ढककर रखा जाने लगा। पत्थर भी

इतने वजनदार रखे जाते कि बड़ी-से-बड़ी लोमड़ी भी उन्हें उठाकर अलग नहीं कर सकती। काफिले वाले असमंजस में थे कि तब भी उनका खाना चोरी गया मिलता और पत्थर उस स्थान से दूर फेंका मिलता।

ऐसा लगा कि कोई बड़ा जानवर आता है, अतएव ताक की गई। बात बड़ी विचित्र निकली, एक साथ कई लोमड़ियों का झुंड आया उनमें से एक ऊँची टेकरी पर खड़ी हो गई, एक दूसरी तरफ। ये थीं चौकीदार, उनका काम किसी भी संभावित हमले की सूचना अपने साथियों को देना होता था। शेष लोमड़ियाँ आगे बढ़ीं और एक साथ शक्ति लगाकर वजनदार पत्थर को उठाकर अलग कर दिया और खाना चुरा ले गईं।

अब काफिले वालों ने एक के ऊपर एक पत्थर रखकर ऊँचा खंभा उठाया और उसके ऊपर खाना रखा, पर लोमड़ियों से वह तब भी न बच सका। अब लोमड़ियों ने अपनी पीठ पर चढ़ाकर किसी चुस्त लोमड़ी को ऊपर चढ़ा दिया उसने ऊपर से खाना गिराया। गिरे हुए खाने को सबने उठाया तथा फिर ऊपर चढ़ी लोमड़ी को उतारा और दूर एकांत में जाकर सारा खाना बाँटकर खा लिया ।

इस घटना की समीक्षा करते हुए स्टेलर ने लिखा है—"यह आश्चर्य की बात है कि लोमड़ी जैसे छोटे जीव ने सहयोग और सहकारिता के महत्त्व को समझा और उसका लाभ उठाया जबकि मनुष्य जैसा बुद्धिशील प्राणी परस्पर स्पर्द्धा रखता, ईर्ष्या, द्वेष और मनोमालिन्य रखता है। ये वृत्तियाँ उसे आगे बढ़ने से रोकती हैं। सुख और शांति, समृद्धि और संपन्नता का राजमार्ग यह है कि मनुष्य भी मिल-जुलकर रहना सीखें, अपने हित को दूसरे के हित से जुड़ा हुआ मानकर एक-दूसरे के साथ सहयोग करना सीखें, यही वृत्ति सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित बना सकती है।"

अमेरिका के पश्चिमी इलाके लावा, प्रेग्यु लावा, सवान्नाह की चिड़ियों का सामाजिक जीवन मनुष्य को पारस्परिक सहयोग की

महत्त्वपूर्ण प्रेरणा देता है। यह पक्षी अपने भोजन के लिए एकांत में घूमते हैं, पर उदर पोषण की आवश्यकता पूरी होते ही सामाजिक जीवन का आनंद लेने के लिए इकट्ठे हो जाते हैं और फिर उनमें तरह-तरह के खेल-कूद होते हैं, उसे देखकर ऐसा लगता है कि मनुष्य को क्लबों की प्रेरणा शायद इन पक्षियों ने ही दी हो। सच पूछा जाए तो सारा मनुष्य समाज एक क्लब है। यदि लोगों ने पेट और प्रजनन को एक साधारण कर्त्तव्य मानकर उसी के लिए लड़ाई-झगड़े बढ़ाए न होते जीवन को इन पक्षियों की तरह क्रीड़ा समझा होता और हिल-मिल कर खेला होता तो आज जो असंख्य सामाजिक समस्याएँ शांति और व्यवस्था में संकट उत्पन्न कर रही हैं न होतीं, मनुष्य हँसी-खुशी का जीवन जी रहा होता।

मनुष्य में सहयोग की भावना ही परस्पर श्रद्धा अनुशासन, प्रेम, और कर्त्तव्यनिष्ठा के भाव भरती है। सहानुभूति-विहीन जीवन कष्ट और उलझन का ही नहीं हिंसा और बर्बरता का भी जीवन बन जाता है। ऐसा तो जंगली जानवर तक पसंद नहीं करते तो मनुष्यों को क्यों पसंद करना चाहिए ? रूसी प्राणि-विशेषज्ञ साइबर्ट सोफ मैदानी क्षेत्र में रहने वाले जानवरों का अध्ययन कर रहे थे— तब उनके सामने एक विचित्र घटना घटित हुई, उन्होंने देखा कि एक सफेद पूँछ वाला उकाब पक्षी आकाश में मँडरा रहा है। आधे घंटे तक वैसे ही मँडराते रहने के बाद उसने एक प्रकार की ध्वनि की। यह आवाज तेज थी। लगता था उसने किसी को दौड़कर आने के लिए पुकारा हो। वह आवाज सुनते ही दूसरे उकाब ने आवाज की और दौड़कर उसके पास आ गया। इस तरह दस-बारह उकाब वहाँ एकत्रित हो गए। फिर जाने क्या बात हुई, वे सब गायब हो गए। दोपहर के लगभग उकाबों का पूरा झुंड उसी स्थान पर उतरा। साइबर्ट सोफ ने ऐसी पोजीशन ली, जहाँ से उनकी सारी हरकत देखी जा सके। सभी उकाब एक घोड़े की लाश के पास पहुँचे। सबसे पहले बूढ़े उकाबों ने उसका मांस

खाया। फिर वे हटकर निगरानी करने लगे और तब दूसरे उकाबों ने मांस खाया। उकाबों की—इस सामाजिक भावना ने साइबर्ट सोफ को बहुत प्रभावित किया।

प्रिंस क्रोपाटकिन ने अपना सारा जीवन प्रकृति के अध्ययन में लगाया। उन्होंने जीव-जंतुओं के व्यवहार से जो निष्कर्ष निकाले हैं उन्हें 'संघर्ष नहीं सहयोग' पुस्तक में एकत्रित कर बताया है कि मनुष्य जाति की सुख-समुन्नति स्पर्द्धा में नहीं, भावनाओं के विकास में है। भावनाओं के विकास से वह अभावपूर्ण जीवन में आनंद और उल्लास, हँसी और खुशी प्राप्त कर सकता है। उन्होंने लिखा है कि ध्रुव प्रदेश के राजहंस परस्पर कितने प्रेम और विश्वास के साथ रहते हैं उसे देखकर मानवीय बुद्धि पर तरस आता है और लगता है कि मनुष्य ने बुद्धिमान होकर भी जीवन की गहराइयाँ पहचानी नहीं। कई बार कोई राजहंसिनी अपने बच्चों को घमंड में या आवेश में ठुकरा देती है, तो उन पिता रहित बच्चों को बगल की मादा अपने साथ मिला लेती है, उसके अपने बच्चे होते हैं, पर वे सब बच्चे इस तरह घुल-मिल जाते हैं मानो वे दो पेट से पैदा हुए न होकर एक ही नर और मादा की संतान हों। मादा उन सबको समान दृष्टि से प्यार देती है और उनकी साज-सँभाल तब तक रखती है जब तक वे बड़े नहीं हो जाते। बड़ी बत्तखें घर बनाने की अभ्यस्त नहीं होतीं, इसीलिए उन्हें अपने अंडे रखने की दिक्कत आती है। संसार में अभाव न हों तो गति कहाँ से आए? प्रगति के लिए तो कठिनाइयाँ भी आवश्यक हैं, मनुष्य इस तथ्य को नहीं समझता जबकि मनुष्येतर प्राणी उसे समझकर अपने जीवन को हास-उल्लासमय तथा निर्द्वंद बनाए रखते हैं बड़ी बत्तखें अपने अंडे इकट्‌ठा एक ही स्थान पर रख देती हैं और क्रम-क्रम से बैठकर उन्हें सेती रहती हैं। इससे कई बतखों परिश्रम बचता है, परेशानी बचती है। संगठित परिवारों की परंपरा भारतीय जीवन-पद्धति का ऐसा ही आदर्श है, पर आज तो हमी लोग

उसे भूलते जा रहे हैं और एकांतवाद की पीड़ाओं से जकड़ते चले जा रहे हैं।

परस्पर सहयोग की महत्ता समझने वाले लोग देश और जातियाँ अपराजेय होती हैं, वे कहीं भी चली जाएँ, वहीं अपना प्रभाव स्थापित कर लेती हैं। एक बार फोरल नामक प्राणि विशेषज्ञ ने एक स्थान की चींटियों के झुंड को एक थैले में भरा और उसे एक ऐसे स्थान पर लाकर छोड़ दिया जहाँ बहुत-से चींटी भक्षी-ग्रास हापर्स तथा पतंगे रहते थे, बर्र, मकड़ियाँ और गुबरैलों की जहाँ जमातें लगी थीं। इनमें से एक भी जीव ऐसा न था जो चीटिंयों से कई गुना बलवान न रहा हो। चीटिंयों के वहाँ पहुँचते ही बर्रों ने युद्ध ठान दिया पर संगठित चोटियाँ घबराई नहीं। उनमें से कितनी ही शहीद हो गईं, पर उनके संगठित हमले के आगे बर्रें न टिक सकीं। गुबरैले यह देखकर बिना प्रतिरोध वहाँ से खिसक गए, पतंगों और ग्रास हापर्स ने अपने बने-बनाए किले चीटिंयों के लिए खाली कर दिए। निर्वासित चीटिंयों ने संगठित शक्ति के बल पर वहाँ भी पहले जैसा ही साम्राज्य स्थापित कर लिया।

यह उदाहरण मनुष्य जाति के, देश और समाज के सुख-समुन्नति के आधार हैं। जो भी इसे समझ पाया निहाल हो गया, सर्व समर्थ हो गया, जिसने सहयोग के महत्त्व को भुलाया वह टूट गया, बिखर गया और जीवन के मोरचे पर हार गया समझना चाहिए।

स्नेह-सद्भाव के वश में संसार

बाहुबल और साधन शक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्तियों को जितना प्रभावित किया जा सकता है, उससे असंख्य गुना अधिक स्नेह-सद्भाव से प्रभावित किया जा सकता है और उन्हें वशवर्ती बनाया जा सकता है। उसका यही कारण है कि सारा संसार और उसका एक-एक घटक संघर्ष व टकराव के आधार पर नहीं, सद्भाव और घनिष्ठता के आधार पर ही परस्पर सुसंबद्ध और सुसंचालित है।

सद्भावनाओं को बढ़ाकर—स्नेह और आत्मीयता का क्षेत्र विकसित कर दूसरों को प्रभावित करने में जितनी सफलता पाई गई है, उतनी संघर्ष, शक्ति प्रयोग और आक्रमण द्वारा कहीं भी नहीं मिली है। स्नेह, सद्भाव अर्थात प्रेमपूर्वक अंतःकरण का प्रभाव केवल मनुष्यों पर ही नहीं, पशु-पक्षियों पर भी पड़ता है।

इस तथ्य को प्रतिपादित करने में इंग्लैण्ड के एक सामान्य व्यक्ति ने न केवल तर्क प्रस्तुत किए वरन प्रामाणिकता की प्रतिमा बनकर स्वयं ही खड़ा हो गया। उसने न केवल सामान्य पशुओं पर प्रेम की प्रतिक्रिया का प्रदर्शन किया, वरन यह भी साबित कर दिया कि खूँखार, उद्दंड और जंगली जानवरों को भी सभ्य और मृदुल बनाया जा सकता है।

उसके पिता ओहियो प्रदेश के फ्रेंकलिन गाँव में रहते थे। नाम था एडम रेरी। उनने एक घोड़ा खरीदा। घोड़ा जितना शानदार था उतना ही सस्ता था। एडम ने सोचा इसे सधा लेंगे। पर था वह बहुत ही खूँखार। उसे सिखाने-सधाने के लिए दूर-दूर से क्रमशः एक

दर्जन से भी अधिक घुड़ सवार बुलाए गए पर वे सभी असफल रहे। घोड़ा किसी के काबू में न आया। एडम ने स्वयं उसे काबू में लाने की कोशिश की और कोड़े मारे। क्रुद्ध घोड़े ने रस्सों से बँधे होते हुए भी उन्हें ऐसा पछाड़ा कि टाँग टूट गई। उन्हें अस्पताल भिजवाया गया। घोड़ा छूट निकला। उसे खतरनाक समझकर पुलिस द्वारा उसे मरवा देने का निश्चय किया गया।

बालक जान रेरी उन दिनों सिर्फ १२ वर्ष का था। उसने सारी स्थिति समझी और सीधा उस जंगल में चला गया, जहाँ घोड़ा चौकड़ियाँ भर रहा था। लोगों को अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ जब उन्होंने देखा कि लड़का बिना लगाम और जीन के उस घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ घर आ रहा है। पूछने पर उसने बताया यह कोई जादू नहीं है। मुहब्बत यदि गहरी और सच्ची हो तो किसी को यहाँ तक कि खूँखार पशुओं को भी वशवर्ती बनाया जा सकता है।

बालक की ख्याति घोड़ों के शिक्षक के रूप में फैल गई। लोग अपने-अपने उद्दंड घोड़े ठीक कराने उसके पास लाने लगे। सिलसिला घोड़ों का चल पड़ा, तो उसने वही काम हाथ में ले लिया। कई वर्ष तक उसे यही काम करना पड़ा। बीस वर्ष का होते-होते वह सरकस के लिए घोड़े सधाने की कला में निपुण हो गया। उसने उन्हें ऐसे-ऐसे विचित्र खेल सिखाए जो उससे पहले सरकसों में कहीं भी नहीं दिखाए जाते थे। इससे पहले घोड़े सधाने की कला उन्हें पीटने, भूखा रखने, पैरों में कीलें ठोकने जैसे निर्दय तरीकों पर अवलंबित थीं। रेरी ने सिद्ध किया कि उससे कहीं अधिक कारगर प्यार-मुहब्बत का तरीका है। वह कहता था कि यदि जानवरों का प्यार मिले तो न केवल पालतू प्रकृति के पशु, वरन नितांत जंगली और मनुष्य से सर्वथा अपरिचित जानवर भी वशवर्ती, सहयोगी एवं सरल प्रकृत्ति के बन सकते हैं। यह उसने सिर्फ कहा ही नहीं, वरन करके भी दिखाया।

जब घोड़े ही उसके पल्ले बँधने लगे, तो उसने उनकी आदतें समझने के लिए कई महीने जंगली घोड़ों के साथ रहने की व्यवस्था बनाई। उनकी रुचि और प्रकृति को समझा। उन्हें बदलने एवं सधाने के आधार ढूँढ़े और अपने विषय में पारंगत हो गया। रेरी ने चुनौती दी कि कोई कितना ही भयंकर घोड़ा क्यों न हो ? वह उसे कुछ ही दिनों में, कुछ घंटों में वशवर्ती बना सकता है। पत्रों में छपी इस चुनौती ने घोड़े वालों में भारी दिलचस्पी पैदा कर दी।

छपी चुनौती से प्रभावित होकर लार्ड डारचेष्टर ने रेरी का द्वारा खटखटाया। उसने १५ हजार डालर में एक बलिष्ठ घोड़ा-घुड़दौड़ में बाजी जीतने की दृष्टि से खरीदा था। कुछ दिन तक तो वह ठीक रहा, पर पीछे वह बेकाबू हो गया। लोहे की जंजीरें तोड़ देता, जंगले उखाड़ देता और कभी-कभी गुस्से से अपनी ही अगली टाँगें काट लेता। उसके लिए ईंटों की काल कोठरी बनानी पड़ी। उसी में चारा-दाना डाल दिया जाता। पूरे चार वर्ष उसे उसी कोठरी में बंद रहते हो गए थे।

लार्ड डारचेस्टर ने उस घोड़े को ठीक करने की चुनौती दी। रेरी ने उसे स्वीकार कर लिया। घोड़ा लंदन तो आ नहीं सकता था इसलिए उसे ही यूरेल्स ग्रीन पहुँचना पड़ा। उस समय घोड़ा अत्यंत क्रुद्ध था। कोठरी के दरवाजे तोड़ने में लगा हुआ था। उसकी भयंकर स्थिति देखकर लोगों ने समझाया कि वह इसे सुधारने के झंझट में न पड़े और वापस चला जाए, पर रेरी अपनी बात पर अड़ा ही रहा। उसे विश्वास था कि वह किसी भी भयंकर जानवर को—इस घोड़े को भी अनुशासित कर सकता है।

रेरी सीधा घोड़े की कोठरी में निहत्था घुस गया। उसने पीठ और गरदन सहलाई और तीन घंटे तक उसके साथ बातें करते हुए दुलारता रहा। जब वह घोड़े के साथ उसकी गरदन के बाल पकड़े कोठरी से बाहर आया, तो दर्शकों ने उसे जादूगर कहा, पर वह यही

कहता रहा यदि प्रेम को जादू कहा जाए तो ही उसे जादूगर कहलाना मंजूर है, उसके पास कोई मंत्र-तंत्र नहीं है।

लार्ड डारचेस्टर इस सफलता पर भाव-विभोर हो गए। उनने घोड़े को उपहार स्वरूप रेरी को भेंट किया और साथ ही एक बड़ी धन राशि भी दी।

महारानी विक्टोरिया ने रेरी की ख्याति सुनी तो उनने भी उसकी कला देखने की इच्छा प्रकट की। शाही निमंत्रण देकर उसे बुलाया गया। प्रदर्शन में रेरी के सामने एक ऐसा घोड़ा प्रस्तुत किया गया, जो पहले तीन घुड़सवारों का कचूमर निकाल चुका था। रेरी उसकी कोठरी में निर्भयतापूर्वक घुस गया और सोलह मिनट बाद उस पर सवार होकर बाहर आया। दूसरे घोड़ों को तो उसने दस मिनट में ही वशवर्ती कर लिया।

अब उसे एक अत्यंत खतरनाक ऐसे घोड़े का सामना करना था कि जिसने दो घुड़सवारों की पहले ही जान ले ली थी। रेरी घुड़साल में भीतर गया और भीतर से कुंडी बंद कर ली। साथ ही यह भी निर्देश किया कि जब तक वह कहे नहीं, तब तक कोई उसे छेड़ने या दरवाजा खोलने की कोशिश न करे।

घोड़ा अत्यधिक भयंकर था। महारानी सहित प्रतिष्ठित दर्शक रेरी के निहत्थे और एकाकी भीतर घुसने से बहुत चिंतित थे। पर वह घुसा सो घुसा ही रहा। जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा था अधीरता बढ़ती जा रही थी, जब पूरे तीन घंटे बीत गए और भीतर से कोई हलचल सुनाई न दी, तो यही समझ लिया गया कि घोड़े ने रेरी को मार डाला। अब दरवाजा तोड़ने का आदेश हुआ। भीतर जो कुछ देखा गया उससे सभी स्तब्ध रह गए। घोड़ा फूँस के ढेर पर सोया हुआ था और उसकी टाँग का तकिया लगाए रेरी भी खर्राटे भर रहा था। दोनों की नींद खुली। वे परम मित्र की तरह साथ-साथ अस्तबल से बाहर आए तो महारानी विक्टोरिया को अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। वह यह न समझ

सकीं कि इतना खूँखार घोड़ा किस प्रकार इतनी जल्दी इतना नम्र बन सकता है ?

रेरी ने अपनी कला का प्रदर्शन टैक्सास में किया जिसमें दूर-दूर के दर्शक और पत्रकार आए थे। उसके सामने चार ऐसे घोड़े पेश किए गए, जो जंजीरों से कसे रहते थे और चारों ही अपने मालिकों का खून कर चुके थे। रेरी पौन घंटे सींखचे वाली कोठरियों में अकेला उनके साथ रहा और फिर चारों को अपने साथ खुले मैदान में ले आया। उसने घोड़ों को लेटने का आदेश दिया, तो वे बिल्ली की तरह लेट गए। दर्शकों ने भारी हर्ष-ध्वनि की।

एक बार तो उसने जंगली बारहसिंगों के एक जोड़े को पालतू कुत्तों जैसा बना लिया और वह उन्हें साथ लेकर प्रेम, दया तथा आत्मीयता के इस प्रत्यक्ष का प्रदर्शन करता गाँव-गाँव घूमा।

फ्रांस सरकार ने उसके कर्तृत्त्व की शोध करने और उसका निष्कर्ष निकालने के लिए एक आयोग नियुक्त किया। अमेरिका के राष्ट्रपिता बुकेनन ने उसकी शिक्षापद्धति के नोट्स लेकर ऐसी पुस्तक लिखाई जिससे घोड़ों को सिखाने-सधाने में सहायता मिले। अश्व विज्ञान की वह पुस्तक अब भी बड़ी प्रामाणिक मानी जाती है।

खूँखार ह्वेल का स्नेहोपचार

भीमकाय जल दैत्य ह्वेल की चर्चा जंतु जीवन में अत्यंत रोमांच और कुतूहल के साथ ही की जाती है, वह कभी उद्धत हो उठे और आक्रमण कर बैठे, तो उसके मार्ग में आने वाले बड़े-बड़े जहाज भी जलमग्न हो सकते हैं। मामूली नावों को तो उसका एक हलका-सा झटका ही रसातल को पहुँचा सकता है। दुस्साहसी शिकारी ही अपनी जान की बाजी लगाकर उसका पीछा करते हैं। उनका दाव लग गया तो फिर एक ही ह्वेल का तेल, मांस, चमड़ा, अस्थिपंजर आदि की बहुमूल्य संपत्ति उन्हें मालोमाल कर देती है। कोई-कोई

ह्वेल तो एक छोटे-मोटे द्वीप जितनी विशालकाय पाई जाती है। उसकी सामर्थ्य का तो कहना ही क्या सौ हाथियों की सम्मिलित शक्ति भी उसकी तुलना में तुच्छ होती है।

संसार के इतिहास में पहली बार जो घायल ह्वेल जीवित स्थिति में किसी प्रकार पकड़ी गई थी, वह मात्र १८ घंटे जिंदा रही। दूसरी बार यह विशालकाय ह्वेल १६ जुलाई १९६४ में सेटर्ता द्वीप के समीप पकड़ी गई और उसे कैद करके वैक्युओवर सागर तट के निकट 'ड्राइडाक' जलयानों की मरम्मत के लिए बनाई गई एक छोटी-सी खाड़ी में रखा गया। ड्राईडाक कंपनी से इसके लिए उस स्थान को जल्दी खाली कर देने में जो शीघ्रता एवं तत्परता बरती और उसे ह्वेल का उपयुक्त कैदखाना बना दिया वह भी एक स्मरणीय सफलता ही कही जाएगी।

सैम्युअल ब्यूरिख कोई पेशेवर शिकारी नहीं था। वह एक माना हुआ मूर्तिकार, कलाकार था। वैक्यूओवर के सार्वजनिक मछली घर की ओर से उसे ह्वेल मछली की मूर्ति बनाने का काम सौंपा गया था। वे मात्र कल्पना के आधार पर नहीं, ह्वेल की यथार्थ आकृति को देखकर तद्नुसार कलाकृति, विनिर्मित करने का उसका मन था। इसी प्रयोजन के लिए वे ह्वेल का शिकार करने के लिए आवश्यक नौका सज्जा एवं अस्त्र शस्त्रों के साथ समुद्र में उतरे और जहाँ ह्वेल रहती थी, उस क्षेत्र की ओर चल पड़े।

कई दिनों की ढूँढ़-खोज के बाद आखिर उन्हें सफलता मिल ही गई। विशालकाय ह्वेल समुद्र की लहरों को चीरती हुई-मुँह से पानी के ऊँचे फुहारे उड़ाती हुई तूफानी गति से सामने ही दौड़ती हुई दिखाई दी। स्याह, मूसा पत्थर से बनी काली चिकनी मूर्ति की तरह वह मृत्यु जैसी लगती थी। खोजी लोग एक बार तो उसे देखकर काँप गए, पर दूसरे ही क्षण उन्होंने साहस बटोरा और हारपून भाला उसे लक्ष्य करके चलाया। हवा में सनसनाता हुआ यह भाला उस जल दैत्य के दाहिने कंधे में जा घुसा। एक मिनट

के लिए श्मशान जैसी निस्तब्धता छाई, फिर थोड़ी ही देर में घायल मछली ऐसा क्रुद्ध कोहराम मचाने लगी मानो वह समुद्र को ही मथ डालेगी। घाव से रक्त की एक नाली-सी बह रही थी और उसका बिखराव लहरों पर लाल रंग के झरने की तरह अपना प्रभाव छोड़ रहा था।

नाविकों ने 'हारपून' भाले की पूँछ में बँधे हुए रस्से को मजबूती से सँभाला। न जाने यह घायल मृत्युदूत इस क्रुद्ध स्थिति में क्या कर गुजरे— इसी आशंका से उस शिकारी नाव में बैठे सभी कर्मचारी काँप रहे थे।

तीन हजार पौंड भारी घायल ह्वेल ने आक्रमणकारी नौका पर उलटकर प्रत्याक्रमण किया। अपने विकराल मुख को फाड़कर वह ऐसी झपटी मानो नाव और नाविकों का अस्तित्व इस समुद्र के गर्भ में ही विलीन करके रहेगी। प्रतिशोध और दरद ने उसे रुद्र रूपधारी बना दिया था। ऐसी भयानकता को देखकर धैर्य भी अधीर हो सकता था।

दूसरे नाविक इस जीवन और मृत्यु की संधिवेला में अपने बचाव और आक्रमण को निरस्त करने के संभव उपाय बरत रहे थे। पर ब्यूरिख ज्यों-का-त्यों अविचल बैठा रहा। मानो उसकी पुतलियाँ दत्तचित हो ह्वेल का चित्र स्मृति-पटल पर उतारने में कुशल कैमरा मैन की तरह तन्मय हों। यह क्षण बिजली की गति धारण किए हुए थे। आक्रमण का परिणाम कुछ ही मिनटों की अपेक्षा कर सकता था। नाविकों में से एक ने मछली की ओर मशीनगन दागनी आरंभ की। दूसरे ने हारपून के रस्से को झटका, ताकि घाव का दरद बढ़कर उसे लौटने को विवश करे। तीसरा नाव को आक्रमण की दिशा से हटा रहा था। सभी अपने ढंग के प्रयास कर रहे थे।

पर ब्यूरिख को न जाने क्या हुआ ? वह किसी भाव-प्रवाह में बह रहा था। ह्वेल में जाने उसने कितना अद्‌भुत सौंदर्य देखा और यह उसकी काय संरचना देख कर एक प्रकार से मुग्ध

ही हो गया। एक क्षण को उसे लगा कोई मत्स्य-कन्या आकाश में उड़ रही है और अपने ऊपर अकारण हुए अन्याय का मर्मस्पर्शी उलाहना दे रही है। कलाकार की करुणा पिघल पड़ी, उसकी आँखों में से आँसू ढुलक पड़े, उनमें न जाने कितनी आत्मग्लानि भरी थी और कितनी मोह-ममता। लगा हारपून उसी के कंधे में चुभा हुआ है। एक बार वह कराह उठा। नाव में बैठे साथी चकित थे कि और नई विपत्ति क्या आई? ब्यूरिख को अचानक यह क्या हो गया?

इस हलचल ने एक नया मोड़ लिया। धावमान ह्वेल की गति रुक गई। मानो उसने ब्यूरिख की भाव भरी अंतर्व्यथा को समझा हो और दोष दुर्भाग्य को देती हुई वह भी इस कलाकार के प्रति अपना प्रेम प्रतिदान प्रस्तुत कर रही हो। हारपून उतना ही गहरा घुसा। रक्तधारा उसी क्रम से बह रही थी, पर उसका प्रत्याक्रमण और क्रोध मानो समाप्त हो गया था। नाविक समझे शायद वह मर रही है। अवसर से लाभ उठाकर वे नए शस्त्र चलाना चाहते थे, पर ब्यूरिख ने उनका हाथ रोक दिया।

ह्वेल पूर्णतया जीवित और सजग थी, पर वह मंत्रमुग्ध की तरह नौका के निकट चली आई । पानी में से उसकी चमकीली आँखें उस कलाकार की ओर इस प्रकार टकटकी लगाए टिकी हुई थीं मानो वह अपनी मर्मकथा कवि जैसी संवेदनाओं के साथ व्यक्त कर रही है। ब्यूरिख को वस्तुस्थिति समझने में देर न लगी। उसे विश्वास हो गया कि आक्रमण-प्रत्याक्रमण का दौर समाप्त होकर भाव-भरा आदान-प्रदान चल रहा है। घायल मछली पालतू कुत्ते की तरह नाव के इर्दगिर्द चक्कर लगा रही थी। इस स्थिति से डरे और घबराए हुए नाविक को कलाकार यही आश्वासन देता रहा, भावना ने आक्रोश को जीत लिया, सद्भावना के प्रवाह में दुर्भावना बहकर चली गई। अब डरने की कोई जरूरत नहीं रह गई। दया ने अब घृणा का स्थान ग्रहण कर लिया है।

ब्यूरिख ने नाव में लगे ट्रांसमीटर द्वारा वैक्यूओवर के अधीक्षक न्यूमेन को सूचित किया कि घायल ह्वेल को जीवित पकड़ लिया गया है, अब उसके निवास की व्यवस्था की जाय। रेडियो सुनने वाले को विश्वास नहीं हुआ कि यह क्या कहा जा रहा है ? कहीं जीवित ह्वेल भी कैद की जा सकती है। बहुत समय पूर्व एक अति घायल मछली को मरणासन्न स्थिति में जीवित पकड़ा गया था, वहभीसिर्फ १८ घंटे जीवित रही। क्या अब ह्वेल को सचमुच ही जीवित पकड़ कर उसे निकट से देखना और उस पर अनुसंधान करना स्वप्न न रहकर एक सचाई बनने जा रहा है।

न्यूमैन हवाई जहाज लेकर घटना-स्थल की ओर दौड़े। उन्होंने आसमान से देखा कि ब्यूरिख की नाव के पीछे ह्वेल शांत चित्त हो चुपचाप पालतू बिल्ली की तरह चली आ रही है। उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। पर जो दीख रहा था उससे इनकार भी कैसे करते ?

ड्राईडाक झील तक नाव के साथ-साथ ह्वेल चली आई। जहाँ यह अनुभव किया गया कि नाव के साथ जुड़ा हुआ हारपून का रस्सा ह्वेल को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचा रहा है उसके सुधार की उचित व्यवस्था की गई। नाव को इसी ख्याल से बहुत धीमे चलाया गया। कुछ ही घंटों में पूरी हो सकने वाली वह यात्रा १७ घंटे में पूर्ण हुई। वैक्यूओवर तट पर इस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए हजारों व्यक्ति खड़े हर्ष-ध्वनि कर रहे थे। हर किसी को यह एक जादुई घटना प्रतीत हो रही थी।

बंदी गृह के रूप में बनी हुई उस खाड़ी में ह्वेल आ गई। अब उसके शरीर में गहरे घुसे हुए 'हारपून' भाले को निकालने का प्रश्न था, ताकि उसे कष्ट मुक्त किया जा सके और जीवित रखा जा सके। इसके लिए एक बहुत बड़ा ऑपरेशन आवश्यक था। डॉ० पैट मेकमीर के नेतृत्व में डाक्टरों एक दल जान हथेली पर रखकर इसके लिए तैयार हुआ। उन्हें लोहे के संदूक में बैठाकर ह्वेल तक पहुँचाया

गया। उन्होंने बड़ी फुरती से वह कई गज चौड़ा ऑपरेशन किया और गहरे घुसे हुए भाले को निकाला। लोग आश्चर्यचकित थे कि मछली किस शांत भाव से किसी समझदार रोगी की तरह उस ऑपरेशन को बिना हिले-ढुले संपन्न करा रही है। घाव बहुत बड़ा था। उसके विषाक्त होने का खतरा था। इस जोखिम से बचने के लिए पेंसलीन की एक बड़ी मात्रा बारह फीट लंबे बाँस में भरकर उस जख्म में भरी गई।

इतना सब हो चुकने और कई दिन जी चुकने के बाद यह विश्वास कर लिया गया कि उसे ह्वेल जीवन के विशाल अनुसंधान के लिए बहुत समय तक पालतू रखा जा सकता है। तब यह सोचा गया कि उसका नामकरण किया जाय और यह पता लगाय जाय कि वह नर है या मादा। काफी ढूँढ़-टटोल के बाद उसे मादा पाया गया। तदनुसार उसका नाम 'भावी डाल' रखा गया। इस नामकरण के अवसर समारोह पर भारी वर्षा में पंद्रह हजार लोग अनुमति पत्र पाकर उस मत्स्य कन्या को देखने आए और लाइन लगाकर बहुत समय में इस अपने ढंग की अनोखी विश्व सुंदरी के दर्शन का लाभ ले सके।

'भावी डाल' की गतिविधियों के अनुसंधान ने मानव जाति को ह्वेल जीवन की दुर्लभ जानकारियाँ दी हैं। साथ ही एक और भी उच्च स्तर का सत्य सामने प्रस्तुत किया है कि सद्भावनाओं की शक्ति अपार है उनके आधार पर मृत्यु को अनुचरी बनाया जा सकता है और घृणा को ममता में परिवर्तित किया जा सकता है। यह प्रयोग न केवल मनुष्य-मनुष्य के बीच सफल होता है, वरन प्राणि जगत् का कोई भी जीवधारी सद्भावनाओं की पकड़ से बाहर नहीं हो सकता, भले ही वह अविकसित मनोभूमि या क्रुद्ध प्रकृति का ही क्यों न हो! जादू की चर्चा बहुत होती रहती है, पर स्नेह और सद्भावना से बढ़कर बिरानों को अपना

बना सकने का शक्ति संपन्न जादू शायद ही और कोई कहीं हो।

प्यार बड़ा है या क्रूरता

प्यार बड़ा है या क्रूरता? मनुष्य बड़ा है या पशु? साहस बड़ा है या भय? इन प्रश्नों का उत्तर दर्शनशास्त्र के आधार पर प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाए, तो उलटे उलझन में फँसना पड़ेगा। तर्क कभी इस पक्ष का समर्थन करेगा, कभी उस पक्ष का। प्रमाण कभी इस पलड़े को भारी करेंगे, कभी इस पलड़े को। बुद्धि की अनिश्चयात्मकता प्रसिद्ध है, वह मान्यताओं, अभिरुचियों और पूर्वाग्रहों की गुलाम होती है। भीतरी रुझान जिधर ढुलकाता है, बुद्धि उसी के समर्थन में जुट जाती है।

तथ्यों के निर्णय का अच्छा तरीका प्रयोग है। कुछ साहसी लोगों ने इस प्रकार के प्रयोग किए हैं कि क्या अंतर्जगत हिंसा-प्रवृत्ति के क्रूरकर्मा पशुओं को स्नेह और सद्‌भावना के वातावरण में रखकर सौम्य और स्नेहिल बनाया जा सकता है। क्या वे अपनी मूल प्रवृत्ति की छोड़कर स्नेह सौजन्य के अनुरूप अपने को बदलने के लिए तैयार हो सकते हैं। ऐसे परीक्षण में जो सफलता मिली है, उससे यह निष्कर्ष उभरकर आया है कि क्रूरता पर प्यार विजय पा सकता है। भय को साहस परास्त कर सकता है और पशुता को मनुष्यता निरस्त कर सकती है।

वन्यपशु विशेषज्ञ डेस्मांड वेकडे ने अपनी पुस्तक 'गारा याका' में उस मादा चीता का वर्णन किया है, जिसे उन्होंने एक झाड़ी में पाया था और अपनी बेटी की तरह पाला था। घटनाक्रम इस प्रकार है कि एक दिन डेस्मांड महोदय वेचुआना लेण्ड की पूर्वी सीमा पर वे शाशी और लिंपोपो के दुआवे पर निरीक्षण के लिए गए। उन दिनों नदियों के संरक्षित वन प्रदेश के वार्डन थे और वन्य पशुओं की देख-भाल की जिम्मेदारी उनकी थी। इस प्रयोजन की पूर्ति वे क्षेत्र में दौरे करके ही कर सकते थे।

उस दिन एक मोटे मगरमच्छ ने पानी पीते हुए चीते पर हमला किया और देखते–देखते उसका सिर चबाते हुए पानी में घसीट ले गया। डेस्मांड महोदय इस घटनाक्रम के मूकदर्शक न रहे उन्होंने गोली चलाई और पानी में धँसे हुए मगरमच्छ का काम तमाम कर दिया, पर बच चीता भी न सका। उसने पानी से बाहर निकलते–निकलते दम तोड़ दिया। यह मादा चीता थी उसके थनों से दूध टपक रहा था, इससे स्पष्ट था कि वह नव प्रसूता है। डेस्मांड महोदय उसके बच्चों का पता लगाने मादा के पैरों के चिन्हों के सहारे उस झाड़ी के पास पहुँचे, जिसमें एकदूसरे से सटे तीनों बच्चे बैठे थे। उनकी उम्र मुश्किल से एक–दो सप्ताह की ही रही होगी। डेस्मांड उन्हें उठाकर घर ले आए। पालने का प्रयत्न भरसक किया पर, उनमें से दो तो मर ही गये। एक को ही जीवित रखा जा सका। वह मादा थी। नाम रखा गया 'गारा याका' उसकी उछल–कूद और शैतानी को देखते हुए यह नाम उनके नौकरों ने रखा था। जिसका अर्थ होता है 'भूत' चुड़ैलों की माँ' नाम व्यंग्य में रखा गया था, पर पीछे वह प्रचलित हो गया। वह उसी नाम से पुकारने पर उत्तर भी देती थी।

झाड़ी में से लाकर डेस्मांड ने यह प्रयोग भी किया कि उनकी नव प्रसूता कुतिया रेक्स चीते के बच्चों को अपनी दत्तक संतान मानने लगे और दूध पिलाने तथा पालने लगे। इसमें आंशिक सफलता मिली। उसने दूध तो नहीं पिलाया पर साथ–साथ रहना और अपने बच्चों के साथ खेलने देना स्वीकार कर लिया। चीता लड़की इन परिस्थितियों में बढ़ती चली गई और अपने बाल–सुलभ चापल्य से इस परिवार का विनोद करती हुई प्रौढ़ बन गई। वातावरण ने उसे दूसरी कुतिया ही बना दिया था। वह रेक्स के साथ इतनी घुल–मिल गई थी और वैसी ही आदतों में इतनी अधिक बढ़ गई थी कि आकृति से भले ही वह चीता कही जाय प्रकृतितः कुतिया ही बनकर रह रही थी।

'गारा याका' अपने पालक के साथ शिकार करने जाती और कई बार तो बब्बर शेरों तक से उलझ जाती और उनके छक्के छुड़ाती तेंदुये, चीते और बाघों से भी उसकी टक्करें हुई, पर हर बार उसकी बहादुरी सराहनीय ही रही। पालतू प्रकृति के कारण लड़ने से डरने की कमजोरी उसमें नहीं ही आने पाई। इतने पर भी मनुष्य के साथ उसका व्यवहार आजीवन सौम्य और सज्जनोचित ही बना रहा।

दो साल की होने पर 'गारा याका' ने शैशव और किशोरावस्था पार करके यौवन में प्रवेश किया। उसके भाव-भंगिमा और हरकतों में विचित्र प्रकार का परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। तब यही उचित समझा गया कि उसे अपना गृहस्थ बनाने की आजादी दी जाय। अंततः उसे चीतों के बाहुल्य वाले जंगलों में छोड़ा गया। जहाँ उसने अपना सहचर ढूँढ़ निकाला और सुहाग रात मनाने के लिए लगभग दस सप्ताह उधर ही निवास करती रही। इस बीच में समय-समय पर डेस्मांड उसकी देख-भाल करने जाते रहे, उन्होंने जब भी पुकारा वह अपने प्रेमी को छोड़कर दौड़कर आई और जो आमिष उपहार उसे दिए गए उन्हें लेकर अपने साथी के पास वापस लौट गई।

यह प्रणयकाल दस सप्ताह तक चला। साथी की आवश्यकता पूरी होने पर फिर अपने पुराने घर में उनका आना-जाना आरंभ हो गया, पर यह सब अधिक दिन न चला, क्योंकि पशु-प्रवृति के अनुसार उसे प्रसव के लिए सघन झाड़ियों वाला एकांत क्षेत्र ही अनुकूल पड़ता था। प्रसूति गृह वह बना ही रही थी कि एक सिंहनी ने उस पर बुरी तरह हमला कर दिया और कई जगह घायल कर डाला। डेस्मांड उसकी खोज-ख़बर बराबर रखते थे। घायल होने की बात का जैसे ही पता लगा, वे स्ट्रेचर पर लादकर उसे घर लाए। जहाँ उसने दो बच्चों को जन्म दिया, उनका पालन भी नाना ने उसी प्रकार किया जैसे कि अपनी वनबेटी 'गारायाका' का किया था।

उपर्युक्त प्रयोग अफ्रीका की जायआडमसन के उस परीक्षण की शृंखला में आता है, जिसमें उसने सिंहों और चीतों को खुले

वातावरण में पालकर संसार को यह बताया है कि स्नेह और विश्वास की शक्ति अपरिमित है, उन्हें ठीक प्रकार किया जा सके तो बर्बरता को सौजन्य के सम्मुख नतमस्तक ही होना पड़ेगा।

ऐसा ही एक प्रयोग माइकेला का है जिसने हिंस पशुओं को स्नेहिल प्रकृति का बनाने के प्रयोग किए, उसमें आश्चर्यजनक सफलता पाई।

अमेरिकन युवती माइकेला ने अविवाहित रहने का निश्चय किया था, ताकि वह स्वच्छंदतापूर्वक संसार के वन-प्रदेशों और वनजीवों की समीपता का आनंद ले सके। उसे वनजीवों से बहुत प्यार था, अपने अतृप्त मातृत्व और वात्सल्य की पूर्ति के लिए उसने कितने ही प्राणी पाल रखे थे। जिनमें बहुत जाति के कुत्ते, बिल्लियाँ, लोमड़ी, नेवले, तोते, बंदर, चूहे, खरगोश, साँप, गिरगिट आदि सम्मिलित थे। आगे इस दिशा में बहुत कुछ देखने-करने की आकांक्षा उसने सँजो रखी थी और यथासंभव प्रकृति के पुत्रों के सान्निध्य में रहने में वह अधिक समय लगाती भी थी।

उसे यह आशा नहीं थी कि इस सनक में कोई पुरुष साथी भी उसे मिल सकता है। पर भाग्य ने सहारा दिया तो वह भी मिल गया। न्यूयार्क में एक भोज में सम्मिलित होने गई, तो उसे ठीक ऐसी ही प्रकृति का एक युवक मिल गया। नाम था आर्मांड डेनिस। दोनों में घनिष्ठता बड़ी और वह इस समाधान के चरम परिणति पर पहुँची कि दोनों 'विवाह तो करेंगे किंतु बच्चे पैदा नहीं करेंगे क्योंकि पहले से ही बहुत बच्चे-विचित्र पालतू जीवों के रूप में मौजूद हैं और भविष्य में उनकी संख्या सहज ही बहुत बढ़ने वाली है। उनका विवाह वस्तुतः प्रकृति-निरीक्षण के अनोखे आनंद को दो साथियों द्वारा मिलकर अधिक हर्षोल्लास युक्त बनाने का एक उद्देश्य पूर्ण समझौता मात्र था। विवाह के बाद दोनों ने और भी अधिक उत्साह के साथ अपना शौक आगे बढ़ाया, वे दूर-दूर तक घूमे अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में इस दृष्टि से उन्हें बहुत कुछ देखने के लिए मिला। इस विषय

में अँगरेजी फिल्में भी कम नहीं। शिकार को पकड़ने में उनकी स्फूर्ति जितनी काम करती हैं इससे ज्यादा उनकी वह बुद्धि काम करती है, जिसकी सूझ-बूझ शिकार को धोखे में डालकर गफलत का लाभ उठाने में आश्चर्यजनक काम करती है। चीते के बच्चे पालने में उसे रेमंड हुक नामक व्यक्ति की सहायता लेनी पड़ी, जो हिंदुस्तान में राजाओं के यहाँ रहकर चीते पालने की विद्या सीख चुका था।

इन चीते के बच्चों का नाम रखा गया लुनी और मुनीयों वे पल तो गए और तुशुर्द की तरह जंजीर में बँधकर खुली जगह में घूमने के अभ्यासी भी हो गए।

झालड रियासत से संबंद्ध श्री बद्रीप्रसाद जायसवाल को शिकार खेलते समय एक-दो महीने का चीते का बच्चा मिल गया, उन्होंने उसे प्रेमपूर्वक पाला। जंजीर से बाँधे रखना ही पर्याप्त था, उसे पिंजरे में बंद करने की कभी जरूरत नहीं पड़ी। जिस वातावरण में उसे पाला गया था, उसने आक्रमणकारी प्रकृति में भारी अंतर ला दिया था। जंजीर में बाँधकर नदी-स्नान कराने एवं गाड़ी में बैठाकर जायसवाल उसे बाहर ले जाया करते और इस सैर-सपाटे में वह प्रसन्न भी खूब होता। पीछे पालक को अपनी कठिनाइयों के कारण उसे चिड़ियाघर भेजना पड़ा। वहाँ वे जब कभी उसे देखने जाते तब प्रसन्नता प्रकट करता और कूँ-कूँ करते हुए पास आने और चाटने का प्रयत्न करता।

डेनिस दंपत्ती का एक जोरदार सदस्य था अफ्रीकी तेंन्दुआ, जिसका नाम उन्होंने तुशुर्द रखा। यों साधारण लोग उसे चीता ही कहते थे क्योंकि आमतौर से लोग यह फरक नहीं जानते कि चीते के मुँह पर लंबी धारियाँ होती हैं, उसके बाल बड़े और कड़े होते हैं जबकि तेंदुआ के मुँह पर चित्तियाँ होती हैं और बाल मखमल जैसे मुलायम। तुशुर्द छोटा बच्चा ही मिला था। जिस प्रकार और जिस वातावरण में उसे पाला गया, उसमें वह इस प्रकार ढल गया मानो

कोई पालतू कुत्ता ही हो। माइक्रेला के पीछे वह अकसर दुम हिलाते हुए घूमते ही देखा जाता। उछलकर अपनी मालकिन की गोद में जा बैठना, उसे बहुत भाता था। कभी-कभी मस्ती के जोश में आता तो उसके हाथ पैर चबाने का उपक्रम करने लगता, पर क्या मजाल दाँत या पंजे की कोई खरोंच तक किसी अंग में लग जाय। उसके प्यार भरे व्यवहार ने साथ में पले हुए अन्य प्राणियों को पूर्णतः निर्भर बना दिया था, जब भी उन्हें अवसर मिलता दूर तुशुर्द के साथ खेलने के लिए इकट्ठे हो जाते और एकदूसरे के साथ खेलने का ऐसा आनंद लेते मानो वे एक ही जाति-बिरादरी के परस्पर भाई-बहन हों।

तेंदुए पालने में सफलता प्राप्त कर लेने के उपरांत माइकेला ने दो चीते के बच्चे पाले। चीते अपेक्षाकृत अधिक दुष्ट होते हैं, जहाँ उनमें ६० मील प्रति घंटा की चाल से दौड़ सकने की क्षमता होती है, वहाँ उनकी धूर्तता, प्रेम और सद्भावना, प्राणी की आत्मचेतना को स्पर्श करती और प्रभावित करती है। यही कारण है कि भाषा समझने वाले, अबोध और प्रेम से चूर-पक्षी भी स्नेह-सद्भाव के वशीभूत हो जाते हैं। उपरोक्त तीन विवरण इस बात के प्रतीक हैं कि स्नेह सद्भाव से मनुष्य तो क्या बिगड़े और क्रुद्ध पालतू जानवरों से लेकर ह्वेल तथा शेर, चीते भी प्रेमी स्वजन और स्नेही-संबधी हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि कोई व्यक्ति आज्ञाकारी संतान, निष्ठावान जीवनसाथी की तरह आपस में स्नेह व सद्भाव रखते हैं।

स्नेह, निष्ठा और पारिवारिकता का अनुगमन

परिवार मनुष्य की पहली प्रयोगशाला है, जहाँ वह स्नेह, त्याग, सेवा और सहिष्णुता का अभ्यास करता है। यह नहीं सोचना चाहिए कि परिवार मनुष्य की अपनी मौलिक रचना है। सृष्टि के अन्यान्य प्राणियों में भी पारिवारिकता, दांपत्य जीवन में परस्पर निष्ठा, उत्सर्ग और त्याग की भावनाएँ देखी जा सकती हैं। गृहस्थ जीवन में अपने सुख-स्वार्थ के आत्यंतिक आग्रह से उत्पन्न होने वाले अनर्थों का यदि कहीं समाधान खोजना हो, तो उन जीव-जंतुओं के पारिवारिक जीवन का अध्ययन करना चाहिए, जो दांपत्य तथा गृहस्थ जीवन के आदर्श कहे जा सकते हैं।

मनुष्य को मनुष्य के निकट लाने और उसे घनिष्ठ संबंध-सूत्रों में आबद्ध करने वाला एक ही तत्त्व है—भावनाएँ। यदि उस तत्त्व को निकाल दिया जाय, तो फिर जो शेष बचेगा वह इतना घृणास्पद होगा कि उसे स्पर्श करना तो दूर कोई देखना भी पसंद न करेगा। भाव-संवेनाएँ ही हैं जो जीवन को जोड़कर रखती हैं, मनुष्य-मनुष्य के बीच मैत्री कायम रखती हैं, व्यवस्था बनाए रखती हैं, भावनाओं से रिक्त संसार में और मरघट में कोई अंतर नहीं रह जाता। दूसरी ओर भावनाओं की शीतल छाया उपलब्ध हो, तो लोग अभाव की स्थिति में भी, आनंदपूर्वक जीवन जीते हैं, भावनाएँ न होतीं तो संसार बिखर गया होता, अब तक कभी का नष्ट-भ्रष्ट हो गया होता।

खेद है मनुष्य जीवन भौतिक आकर्षणों की भयंकर दौड़ में भाव-विहीन होता जा रहा है, जिससे साधन बढ़ने पर भी निराशा बढ़ रही है, बढ़ते हुए अपराध, तलाक, आत्महत्याएँ इस तथ्य के प्रमाण हैं कि मनुष्य का हृदय-रस सूखता जा रहा है। यदि इस ओर मनुष्य जाति ने स्वयं ही रचनात्मक दृष्टि न डाली, तो एक दिन उसका विनाश भी हो सकता है।

यह मनुष्य के लिए लज्जा की बात है कि उस जैसा विचारशील प्राणी जबकि इन मानवीय गुणों से रिक्त होता जा रहा है तब भी सृष्टि के दूसरे अबोध प्राणियों की भाव-संवेदना यथावत अक्षुण्ण है। मनुष्य मर्यादाशील, विचारशील प्राणी होने का दम भरता है, पर टूटते हुए दांपत्य संबंध, नष्ट होती पारिवारिक शांति, उच्छृंखल होती जा रही भावी पीढ़ियाँ और अराजकतापूर्ण सामाजिक संबंध यह बताते हैं कि हमारा जीवनक्रम अशुद्ध होता जा रहा है। हम चाहें तो अपने दूसरे भाइयों से सीखकर अपने कदम फिर पीछे लौटा सकते हैं।

''डिक-डिक'' जाति का हिरन एकपत्नीव्रती होता है। यह सदैव जोड़े में रहता है। अपने जीवन काल में वह कभी अन्य हरिणी के साथ सहवास नहीं करता है। शेर और हाथी के बारे में भी ऐसी ही बातें होती हैं। जोड़ा बनाने से पूर्व तो वह पूर्ण सतर्कता बरतते हैं, किंतु एक बार जोड़ा बना लेने के बाद वे तब तक इस मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते, जब तक कि नर या मादा में से, किसी एक की मृत्यु न हो जाए। मृत्यु के बाद भी कई ऐसे होते हैं, जो पुनर्विवाह की अपेक्षा विधुर जीवन व्यतीत करते हैं, पर उस स्थिति में उनकी संवेदना नष्ट हो जाती है और वे प्रायः बहुत अधिक खूँखार हो जाते हैं। उस स्थिति में वे भी जब कभी अपनी मादा की याद में आँसू टपकाते दीखते हैं, तो करुणा उभरे बिना नहीं रहती। तब पता चलता है कि जीवन का आनंद भावनाओं में है पदार्थ में नहीं।

चिंपाजिओं की भी पारिवारिक और दांपत्य निष्ठा मनुष्य के लिए एक उदाहरण है। यह अपना निवास पेड़ों पर बनाते हैं, जोड़ा बनाने के बाद चिंपाजी अपने दांपत्य जीवन को निष्ठापूर्वक निभाते हैं और किसी अन्य मादा या नर की ओर वे कभी भी आकृष्ट नहीं होते। नर अपने समस्त परिवार की रक्षा करता है जब वे वृक्ष पर बने विश्राम गृह में आराम करते हैं, तो वह नीचे बैठकर उनकी पहरेदारी करता है। कर्त्तव्य-भावना से ओत-प्रोत चिंपाजी की तेजस्विता देखते ही बनती है। वस्तुतः अपनी जिम्मेदारियाँ भली प्रकार निभा ली जाएँ तो इससे बड़ी कोई अन्य साधना नहीं "**योगः कर्मसु कौशलम्**" का महा मंत्र इसी तथ्य का तो बोध कराता है कि कर्त्तव्यों का पालन मनुष्य संपूर्ण निष्ठा के साथ करे।

जंगली बत्तखें भी पारिवारिक निष्ठा से ओत-प्रोत होती हैं अपनी जाति के अतिरिक्त यह बत्तखों की लगभग १४० जातियों में से किसी से भी संबंध नहीं बनातीं। जापानी मैंडेरिन इनके बहुत अधिक समीप होती है, किंतु जीवशास्त्रियों के अनेक प्रयत्नों से भी उसने उससे मिलने से इनकार कर दिया।

दांपत्य निष्ठा की तरह जीवों में नर-मादे का पारस्परिक प्यार भी भावपूर्ण होता है, जंगली भैंसे, हिरण, बारहसिंगे तथा साँभर भी अपनी मादा के सींगों से सींग रगड़ कर अपनी प्रेम-भावना प्रदर्शित करते हैं। सिंह-सिंहनी को अपना पराक्रम दिखाकर आकर्षित करता है तो हाथी को अपनी सूँड उठाकर अपनी प्रेम-भावना का परिचय देना पड़ता है। कुछ पक्षी तथा जीव-जंतु सुरीले राग और आवाज से अपनी विरह-व्यथा व्यक्त करते और प्रणय-याचना करते हैं। कुछ जीवों में नेत्रों से अभिव्यक्त कर अपने प्रेम का परिचय देने का प्रचलन होता है, पर प्रेम की स्वाभाविक अभिव्यक्ति प्रत्येक जीव में होती है। अतएव इसे एक सनातन तत्त्व के रूप में उसकी पवित्रता बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए। प्रेम प्रदर्शन की वस्तु नहीं, वह आत्मा का भूषण है। अतएव वह जाग्रत किसी के भी प्रति हो

पर प्रयास उसके सार्वभौमिक रूप की अनुभूति का ही हो तभी सार्थकता है।

विवाह से पूर्व नर और मादा रैवेन एक वर्ष तक लगातार साथ-साथ रहते हैं। मादा अपने लिए ऐसे नर का चुनाव करती है जिसमें नेतृत्व के गुण हों, जो साहसी हो, निर्भय हो, आलसी, दुर्बल, मूर्ख आदमियों की कौन पूछ करे, प्रकृति उद्योगी, साहसी और हिम्मत वालों का वरण करती है। मादा रैवेन इस मामले में पूरी छान-बीन करके अपना फैसला देती है। यदि वह देखती है कि नर में नरोचित गुणों का अभाव है, तो वह उसे छोड़कर किसी अन्य का वरण करती है। दहेज और कृत्रिम गुणों पर जिस तरह लड़कियाँ ठग ली जाती हैं रैवेन को ठगा जाना नितांत असंभव होता है।

कई बार नर और मादा भूल-भटक जाते हैं। उन परिस्थितियों के लिए वे पहले से ही कुछ खास ध्वनियाँ निर्धारित कर लेते हैं जो उनकी जाति के किसी भी अन्य रैवेन को मालूम नहीं होती। उन्हीं के सहारे वे एकदूसरे को ढूँढ़ लेते हैं। एक बार परीक्षण के दौरान डॉ० ग्विनर एक कुत्ते की आवाज सुनकर चौंके, उन्होंने देखा पास कोई कुत्ता नहीं है, फिर भौंकने की आवाज कहाँ से आ रही है, थोड़ी ही देर में पता चल गया कि एक रैवेन जिसका कि सगाई काल चल रहा था, संकेत देकर अपने बिछड़े मंगेतर को बुला रहा था। थोड़ी ही देर में दोनों मिल गए।

विवाह के बाद भी मादा अपने दांपत्य अधिकार और स्वाभिमान के भाव को सुरक्षित रखती है। नारी के कारण अपना वर्चस्व खो दिया जाए, यह बात कोई महिला स्वीकार भले ही कर ले रैवेन को स्वीकार नहीं। संबंध निश्चित कर लेने के बाद वह अपने रहने के उपर्युक्त स्थान ढूँढ़ती है। नर मकान बनाता है यदि इस बीच मादा को वहाँ की परिस्थितियाँ अनुकूल न जान पड़ीं, तो वह अन्य स्थान ढूँढ़ेगी। कई बार इस खोज में नर को कई अधूरे बने मकान छोड़कर बार-बार नये मकान बनाने पड़ते हैं। यह मादा की इच्छा पर है कि

वह इनमें से किसी भी स्थान को चुने और उसमें रहने का अंतिम फैसला करे।

ग्विनर लिखते हैं—कि पति और पत्नी के संबंध कैसे हैं, पारिवारिक जीवन में प्रेम, शांति, सुख और सुव्यवस्थित है या नहीं इस बात का पता लगाना हो, तो घर की, बच्चों की स्थिति देखकर पता लगाया जा सकता है, जिन घरों में प्रेम, मैत्री एवं सद्भाव होता है, वे घर साफ-सुथरे सजे हुए। उनके बच्चे और सदस्य हँसते-खेलते हुए होते हैं; यही बात रैवेन के बारे में भी है, उसका घोंसला देखकर बताया जा सकता है कि उनके पारिवारिक जीवन में प्रेम और सौहार्द्र है अथवा नहीं।

पति रैवेन अपनी मादा के प्रति समर्पित और एक नारी व्रत का पालन करके मनुष्य जाति को शिक्षा देता है और एक प्रकार से उसकी कामुकता की धिक्कार कर कर्त्तव्यभाव की प्रेरणा देता है। अंडे सेने के १८-१९ दिन मादा लगातार घोंसले में बैठी रहती है। उस अवधि में दाना लाकर पत्नी की चोंच में डालकर खिलाने का काम नर बड़ी भावना के साथ पूरा करता है। एक डच जूलाजिस्ट ने लिखा है कि एक बार अंडा सेने की अवधि में एक मादा रैवेन मर गई, उस समय पति ने लगातार भूखे रहकर संतति पालन का बोझ उठाया और बच्चों को लेकर बड़ा करने से लेकर उन्हें उड़ना सिखाने तक का सारा उत्तरदायित्व अकेले निभाया।

वासना नहीं, कर्त्तव्य-भावना से प्रेरित

मनुष्य ही नहीं, सृष्टि के हर जीव में प्रेम की प्यास अदम्य होती है। अमेरिका के सैनडिगो चिड़िया घर की निर्देशिका बेले जे० वेनशाली ने चिड़िया घर में अपने उन्नीस वर्ष के अनुभवों का जिक्र करते हुए लिखा है—मैंने वन्य पशुओं के जीवन में भी प्रेम की तड़प देखी, वे भी प्रेम से ही सीखते सिखाते हैं—एकबार चिड़ियाघर की मादा भालू ने एक बच्चे को जन्म दिया, उसका नाम टाकू रखा गया। भालू जितना क्रोधी प्रकृति का खूँखार जानवर है, उससे अधिक

उसमें वात्सल्य भाव देखा जा सकता है। देखने से लगता है कि संसार की विषम परिस्थितियों ने उसे क्रुद्ध होने को विवश न किया होता, तो भालू संसार में सबसे अधिक स्नेह और ममता वाले स्वभाव का जीव होता। मादा चार माह तक बच्चे को पेट से चिपकाए गुफा में पड़ी रही। गुफा से वह बाहर भी नहीं निकली किंतु फिर जैसे उसे याद आया कि बच्चे के प्रति प्रेम और वात्सल्य का यह तो अर्थ नहीं कि उसके आत्मविकास को अवरुद्ध रखा जाए। मादा माँद से बाहर आई, नन्हा शिशु उसके साथ-साथ बाहर निकला। मादा सीधे तालाब के पास पहुँची और पानी में उतरकर स्नान करने लगी। उसने अपने बच्चे को भी बहुतेरा पानी में उतरने का प्रेरित किया मुँह से तरह-तरह की आवाज निकाली, उससे प्रतीत होता कि माँ उसे पानी में बुला रही है न आने के लिए उसमें गुस्सा भी है, किंतु वह अपनी प्यार भावना को भी दबा सकने में असमर्थ है, बच्चा अपनी माँ के साथ खिलवाड़ करता है। कभी-कभी किनारे पहुँच कर उसके बाल पकड़कर बाहर खींचता है मानो वह माँ को पानी में नहीं रहने देना चाहता, पर माँ जानती है कि आरोग्य के लिए बच्चे को स्नान कराना आवश्यक है। ममतावश उसने कई बार बच्चे को छोड़ा पर उसे गुस्सा भी दिखाना पड़ा। वह नाराजी भी प्रेम का ही एक अंग थी, भगवान भी तो नाराज होकर अपनी बनाई सृष्टि अपने बच्चों को दंड देता है, पर उसकी दंड-प्रक्रिया भी उसके प्रेम का ही प्रतीक है। खराब-से-खराब सृष्टि को भी वह नष्ट करना नहीं चाहता, उसे सुधार की आशा रहती है इसलिए वह अपनी उस साधना को न बंद करते हुए भी अपनी संतान पर प्यार रखना नहीं भूलता। स्वयं भी रोता रहता है, पर नाराज होकर सृष्टि को नष्ट कर डालने की बात उसके मन में कभी आई नहीं।

एक दिन मादा ने जबरदस्ती की और उसे पानी में पकड़ ही ले गई उसने अपने पंजों से बच्चे को अच्छी तरह धोकर स्नान कराया।

कभी वह डूबने लगता तो माँ उसे सतह से ऊपर उठा देती। धीरे-धीरे शिशु का संशय दूर हो गया और वह अपनी माँ के साथ अच्छी तरह तैरना सीख गया।

'स्टिकल-बैक' नाम की एक मछली होती है, जो समुद्र में ही पाई जाती है। डॉ० लार्ड ने इस मछली की विभिन्न आदतों और क्रियाओं की बहुत सूक्ष्मता से अध्ययन किया। बैकोवर ने आइलैंड में महीनों रह-रहकर इस मछली की जीवनपद्धति का अध्ययन किया और बताया कि मनुष्य चाहे तो इससे अपने पारिवारिक जीवन को सुखी और सुदृढ़ बनाने की महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ ले सकता है।

नर स्टिकल बैक अपना घर बनाने के लिए बहुत पहले से तैयारी प्रारंभ कर देता है। सबसे पहले सारे समुद्र में घूम-घूमकर वह कोई ऐसा स्थान ढूँढ़ निकालता है, जहाँ पर पानी न बहुत तेजी से बह रहा हो और न बहुत धीरे। जगह शांत एकांत हो और वहाँ हर किसी का पहुँचना भी संभव न हो।

तत्परतापूर्वक ढूँढ़-खोज के बाद जब उपर्युक्त स्थान मिल जाता है, तब स्टिकल बैक पत्नी के लिए सुंदर घर बनाने की तैयारी करता है। इसके लिए उस बेचारे को कितना परिश्रम करना पड़ता है, यह बात अपने माता-पिता की पीठ पर चढ़े, विवाह की कामना करने वाले युवक भला क्या समझेंगे ? स्टिकल बैक पानी में तैरती हुए छोटे-छोटे पौधों की नरम-नरम लकड़ियाँ, तैरते हुए पौधों की जड़ें इकट्ठी करता है और उन्हें चुने हुए स्थान पर ले जाता है। विवाह के शौकीन स्टिकल को पहले खूब परिश्रम और मजदूरी करनी पड़ती है। अपने शरीर से वह एक प्रकार का लसलसा पदार्थ निकालता है और एकत्रित सारी वस्तुओं को उसी में चिपका लेता है, ताकि उसका इतना परिश्रम व्यर्थ न चला जाए। उसने जो लकड़ियाँ एकत्रित की हैं, वह अपने स्थान तक पहुँच जाएँ।

स्टिकल बैक पूरे आत्मविश्वास के साथ काम करता है। सारा एकत्रित सामान मजबूती से चिपक गया है, इसका विश्वास करने के लिए वह अपने शरीर को फड़फड़ाता हुआ नाचता है; जैसे—उसे परिश्रम में आनंद लेने की आदत हो। जब एक बार विश्वास हो गया कि सामान गिरेगा नहीं, तब आगे बढ़ता है और पूर्वनिर्धारित स्थान पर इस सामान से मकान बनाता है, शरीर का लसलसा पदार्थ यह सीमेंट का काम करता है और लाई हुई लकड़ियाँ ईंट-पत्थरों का, आगंतुक वधू के लिए महल बनाकर एक बार वह उसे घूम-घूमकर देखता है। लगता है कि अभी वैभव में कुछ कमी रह गई। फिर वह रेत के बारीक टुकड़े मुख में भर कर लाता है और मकान के फर्श पर बिछाता है। कोठरी में कहीं टूट-फूट की गुंजाइश हो, तो उसे ठीक करता है। सारा मकान वार्निस किया हुआ-सा हो जाने के बाद ही उसे संतोष होता है। जब ये तैयारियाँ पूर्ण हुईं है, तब यह स्वयं मादा की खोज में निकालता है। उसे दहेज और लेन-देन की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह जानता है, नारी-नर की अपनी आवश्यकता भी है, इसलिए प्रिय वस्तु को भरपूर स्वागत और सम्मान अपनी ओर से ही क्यों न दिया जाए। वह मनुष्यों की तरह का दंभ और पांखड प्रदर्शित नहीं करता।

उपर्युक्त पत्नी मिल जाने पर वह उसे घर लाता है। पत्नी कुछ दिन में गर्भावस्था में आती है, तब यह उसे घूमने को भेजता रहता है, घर और अंडों की देख-भाल तब वह स्वयं ही करता है। यह उनके भोजन आदि का ही प्रबंध नहीं करता सुरक्षा के लिए दरवाजे पर कड़ा पहरा भी रखता है। मि० फ्रैंक वकलैंड ने इसकी कर्मठता का वर्णन करते हुए लिखा है कि मकान में थोड़ी-सी भी गड़बड़ी हो तो यह उसे तुरंत ठीक करता है।

स्टिकल वैक अपने बच्चों और पत्नी के पालन का उत्तरदायित्व पूरी सूझ-समझ के साथ निभाता है। वह उन्हें परदे में नहीं रखता। पर्याप्त ऑक्सीजन मिलती रहे, इसके लिए वह अपने मकान में दो

दरवाजे रखता है। इससे वहाँ के पानी में बहाव बना रहता है और ताजी ऑक्सीजन मिलती रहती है। यदि बहाव रुक जाए तो वह तुरंत शरीर फड़फड़ाकर बहाव पैदा कर देता है, जिससे रुके हुए पानी की गंदगी प्रभावित न कर पाए।

स्टिकल बैक का जीवन कितना कलात्मक और सुरुचि पूर्ण है। इधर बच्चे निकलने लगे, उधर उसने मकान के ऊपरी भाग छत को अलग करके एक बढ़िया झूला तैयार किया। मनुष्यों की तरह गुम-सुम सा जीवन पसंद नहीं। झूला बनाकर उसमें बच्चों को भी झुलाता है और पत्नी को भी। स्वयं उस क्षेत्र में परेड करता रहता है, जिससे उसके आनंद और खुशहाली की अभिव्यक्ति होती है, और दूसरे दुश्मन तथा बुरे तत्त्व डरकर भाग जाते हैं, जैसे—कला प्रिय और सुरुचिपूर्ण सद्गृहस्थ से अवगुण दूर रहने से अशांति पास नहीं आती। बच्चे झूला छोड़कर इधर-उधर भागते हैं, तो यह उन्हें बार-बार झूले में डाल देता है, जब तक बच्चे समर्थ न हो जाएँ, यह उन्हें अबारागर्दी और कुसंगति में नहीं बैठने देता। अपनी रक्षा करने में जब वे समर्थ हो जाते हैं, तभी उन्हें जाने और नया संसार बनाने की अनुमति देता है।

दाम्पत्य निष्ठा के अद्भुत उदाहरण

विकसित प्राणियों में से जो भी लंबे समय तक अपने लिए जोड़ों का चुनाव करते हैं, उनमें यही कर्त्तव्यभावना-प्रेम की प्यास प्रमुख रहती है और वे एकदूसरे के प्रति निष्ठापूर्वक अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं।

बाघ बड़ा उत्पाती जीव है, भूख लगने पर प्राकृतिक प्रेरणा से उसे आक्रमण भी करना पड़ता है, किंतु उस जैसा एकनिष्ठ पतिव्रत और पत्नीव्रत देखते नहीं बनता है। अपना अधिकांश जीवन जंगलों में व्यतीत करने वाले जंगली जानवरों की प्रवृत्तियों का समीप रहकर अध्ययन करने वाले डॉ० स्टेफर्ड ने एक बहुत ही रोचक घटना दी है। दक्षिण अफ्रीका के जंगल के एक बाघ ने अभी कुछ ही दिन पूर्व

अपना जोड़ा चुना था। बाघिन-वधू बीमार पड़ गई और उसी अवस्था में एक दिन उसकी मृत्यु भी हो गई। उस जंगल में और भी अनेक बाघ-कुमारियाँ उसे मिल सकती थी, किंतु उस बाघ ने फिर किसी को अपना साथी नहीं चुना। बहुत दिन पीछे उसे एक ऐसी मादा मिली, जो स्वयं भी एकाकी जी रही थी उसके पति का संभवतः देहावसान हो गया था। दोनों विधुरों ने अपना युगल फिर से स्थापित कर लिया। पर सामान्य स्थिति में वे सदैव एकनिष्ठ ही रहते हैं कोई भी जोड़ा दूसरे को बुरी दृष्टि से नहीं देखता। बाघ बड़ा हिंसक होता है किंतु अपनी सच्चरित्रता के कारण वह सशक्त और समर्थ भी इतना होता है कि जंगल के दूसरे जीव उसको दूर से ही नमस्कार करते हैं।

अपने साम्राज्य में अन्य सजातीयों की उपस्थिति बरदाश्त न करने वाला उल्लू भी दांपत्य निष्ठा का एक अनोखा उदाहरण है। एक बार जोड़ा बना लेने के बाद वे गृहस्थ जीवन का निष्ठापूर्वक पालन करते हैं। मादा को ३० से ३५ दिन तक अंडे सेने में लगते हैं। इस अवधि में नर अपनी मादा के लिए स्वयं भोजन जुटाता है और उसकी रक्षा करता है। उल्लू के बच्चे तब तक उड़ना और शिकार करना नहीं सीख पाते, जब तक वे प्रौढ़ न हों, उन्हें यह माता-पिता ही आश्रय देते और परिवरिश करते हैं।

धनेश पक्षी को तो और भी अधिक कष्टपूर्वक साधना करनी पड़ती है। अंडे सेने के लिए आवश्यक ताप तथा मादा की सुरक्षा के लिए वह जिस खोल में रहती है, नर उसका मुँह बिलकुल बंद कर देता है, उतना ही खुला रखता है जिससे चोंच भर बाहर निकल सके। बस इसी से नर अपनी मादा को खिलाता-पिलाता रहता है।

पत्नी के बाद सेवा के सबसे बड़े अधिकारी अपने बच्चे होते हैं। जिन्हें जन्म दिया है, उन्हें अच्छी तरह स्नेह-वात्सल्य देकर पोषण प्रदान करना भी एक प्रकार की समाजसेवा ही है। इस कर्त्तव्य

की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। जबकि दूसरे जीव अपने दायित्व हँसी-खुशी निभाते रहते हैं, तब मनुष्य ही इधर से मुँह मोड़े यह उचित नहीं।

मनुष्य और पशु दोनों में ही मातृत्व भावना समान रूप से पाई जाती है। हिरण, गाय, नील गाय आमतौर पर सीधे जानवर होते हैं। किंतु इनके बच्चों को किसी प्रकार का खतरा हो, तो उनकी रक्षा के लिए यह कुछ हिंसक हो उठते हैं। बिल्ली के लिए एक कहावत है—वह अपने बच्चों को सात घर घुमाती है। जीवशास्त्रियों ने अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि उसे अपनी संतान की असुरक्षा का भय सताता रहता है, इसलिए वह सुरक्षित स्थान की खोज करती रहती है, बच्चों को अपनी गोद में ही सुलाती है। कुतिया के बच्चों को कोई उठा ले जाए, तो वह उदास होकर डोलती है। वह अपने बच्चों को किन्हीं सुरक्षित हाथों में देखती है, तो उसे बहुत कृतज्ञ और कातर दृष्टि से देखती है, मानो उसे अपनी निर्धनता और उन हाथों में बच्चे के उज्ज्वल भविष्य का ज्ञान हो।

सारस अपने अंडे इतने सुरक्षित, पानी से घिरे हुए, किसी नन्हे टापू पर उन दिनों देती है, जब बाढ़ की कतई आशंका न हो, वहाँ भी यदि कभी कोई लड़के या जंगली जानवर पहुँच जाते हैं, तो उन्हें लहू-लुहान करके छोड़ते हैं। सारस कभी भी अपने अंडों या बच्चों को अकेला नहीं छोड़ते। एक भोजन की तलाश में जाता है, तो दूसरा उनके पास रहता है।

कौवे और सर्प जैसे क्रूर जीव भी अपने बच्चों के प्रति अत्यधिक भावनाशील होते हैं। कौवे के अंडों या बच्चों को कोई छेड़खानी करे, तो समूचा काक-संप्रदाय उन पर टूट पड़ता है। सर्प अपने बच्चों को अपनी कुंडली में रखता है, उस अवस्था में उसके भोजन का प्रबंध नर करता है। इस प्रकार वे अपनी संतति सहिष्णुता का परिचय देते हैं। छछूँदर गर्भधारण के बाद से ही भावी शिशु के लिए खाद्य-

परिचय-संग्रह प्रारंभ कर देती है ताकि प्रसव के बाद जब तक बच्चे भली प्रकार चलने-फिरने न लगें, तब तक वह उनकी पहरेदारी कर सके।

इस संबंध में सबसे अधिक सुचारु व्यवस्था हाथियों में होती हैं, वे न केवल बच्चे की अपितु समूचा-कबीला गर्भिणी हथिनी को एक घेरे में रखकर उसकी सुरक्षा का प्रबंध करते हैं। यदि उस पर कोई आक्रमण करे, तो हाथी इतने अधिक खूँखार हो उठते हैं कि सारे जंगल को उजाड़कर रख देते हैं।

हिंद महासागर की कुछ मछलियाँ तो अपने अंडों को जो हजारों की संख्या में एक छत्ते के आकार में होते हैं, तब तक अपने ही साथ तैराती-घुमाती हैं, जब तक बच्चे न निकल आएँ और वे स्वयं चलने-फिरने न लगें। एरियस तथा तिलपिया मछलियाँ तो अंडों को अपने मुँह में सेती और उनके आत्मनिर्भर होने तक अपने ही साथ रखती हैं। तिलपिया को थोड़ी भी आशंका हो, तो वह फिर अपने बच्चों को मुँह में छिपाकर उनकी रक्षा करती है। कुत्ते, बिल्ली जिस सावधानी से अपने बच्चों को मुँह में दबाकर उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती हैं—यह उससे भी अनूठा उदाहरण है। चूहों के दाँत बड़े तेज होते हैं; किंतु अपने बच्चों को उठाते समय उन्हें कहीं भी कतई खरोंच नहीं आती, वे इस कोमलता से उन्हें उठाते हैं।

मछलियाँ पानी में रहने वाली जीव हैं, पर गौराई जाति की मछलियाँ एक विशेष प्रकार की घास से अपना घोंसला और उसी में बच्चे पालती हैं, यही नहीं उन्हें चिड़ियों की तरह बड़े होने तक स्वयं ही खिलाती-पिलाती भी हैं। सील मछलियाँ अपने बच्चों की परवरिश के लिए अपने शरीर में खुराक की पहले ही प्रचुर मात्रा एकत्र कर लेती हैं और उन्हें वे ५ सप्ताह तक उसी के बल पर किनारे पड़ी सेती रहती हैं। इस अवधि में वे पूर्ण उपवास करती हैं।

मादा गैंडा अपने बच्चों को सदैव अपने आँखों के सामने रखती हैं। वह कभी दाएँ-बाएँ होना चाहे तो वह धौल मारकर अनुशासन में रहने को विवश करती है। शू भी अपने बच्चों का पालन करते समय उन्हें अनुशासन सिखाता है। वह जब चलती है तो अपने एक बच्चे को अपनी पूँछ पकड़ कर पंक्ति बद्ध रेल के डिब्बों की तरह चलते हैं।

आरेजूटन और गिदन बंदर तथा चिंपाजी पेट पर पीठ पर लादे, बच्चों को बड़े होने तक घुमाते हैं। कई बार बच्चे मर जाते हैं तो भी ये मातृत्व पीड़ावश कई-कई दिनों तक उनकी लाश को ही छाती से चिपकाएँ घूमते रहते हैं, ओपोसम वोमनेट के कंगारू की तरह की पेट में थैली होती है। ये बच्चों को उसी में रखकर पालते हैं कहीं रुकने पर वे इन्हें बाहर निकालकर सिखाते-समझाते भी हैं। केवल लाड़वश पेट में लगाए रहें तो इसमें कर्त्तव्य पालन कहाँ हुआ, वे उन्हें शिकार करना, खेलना-कूदना भी सिखाते रहते हैं।

वेल्स द्वीप से एक बार नामक्रम आदि के निर्देश पट्ट पैरों में बाँधकर कुछ जल-कपोतों को विमान से ले जाकर अन्य देशों में छोड़ दिया गया। इनमें एक कपोती भी थी, जिसने हाल ही में दो बच्चों को प्रसव दिया था, उसे ले जाकर वेनिस में छोड़ा गया, जबकि अन्य जल-कपोत ५-६ माह पीछे लौटे, कपोती ९३० मील की दूरी १५ दिन में तय कर वापस बच्चों के पास लौट आई। जिनके संतान नहीं थी, वे अटलांटिक और जिब्राल्टर होते हुए ३७०० मील की यात्रा आनंदपूर्वक भ्रमण करते हुए लौटे, इससे यह पता चलता है कि कर्त्तव्य पालन की मूल प्रेरणा संवेदनाओं से प्रस्फुटित होती है। सच्चे और ईमानदार व्यक्ति की पहचान करनी हो तो उसकी संवेदना टटोलनी होगी। संवेदना का अर्थ ही है अपने से छोटों के प्रति करुणा, दया और उदारता की भावनाएँ रखना, उनकी कष्ट-कठिनाइयों में सहायक होना।

शेर जैसे खूँखार जीव में मातृ-सुलभ वात्सल्य प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। सुरक्षा की दृष्टि से शेरनी को कई बार एक स्थान से दूसरी घाटी तक मीलों लंबा स्थान बदलना पड़ता है, तब शेरनी एक-एक बच्चे को गरदन में बड़ी नरमी से पकड़कर दूसरे स्थान पर पहुँचाती है, यह कार्य वह प्रायः रात में करती है।

चुहिया जैसा तुच्छ प्राणी भी ममता से ओत-प्रोत है, उसके दाँत अत्यधिक पैने होते हैं, तो भी वह उन्हें उठाते समय इतनी भावुक होती है कि उन्हें खरोंच भी नहीं आती।

अन्य जीवों में इस तरह की संवेदना मिले और मनुष्य उनसे शून्य रहे—यह परमात्मा के अनुग्रह का अपमान है। हमें अपनी भावनाएँ परिवार और बच्चों तक ही सीमित न रखकर समस्त मानव जाति तक फैलावें और सबके कल्याण की बात सोचनी चाहिए तभी मानव जीवन की सफलता और सार्थकता है।

वेट्टा नामक मछली की कहानी गृहस्थ में पुरुषों के कर्त्तव्य का अच्छा बोध कराती है।

मादा ने अंडे दिए और फिर बच्चे सेने और बड़े होने तक उनकी सुरक्षा का उत्तरादायित्व नर महोदय पर आ पड़ा। मनुष्य ही संसार में ऐसा प्राणी हैं, जो बच्चे पैदा करने के बाद उनकी परवरिश का सारा भार स्त्री पर छोड़ देता है, जबकि संसार के अधिकांशतः सभी जीव केवल मात्र वासना के लिए सहचर नहीं बनते, वरन गृहस्थ का निर्वाह भी वे पूर्ण निष्ठा के साथ करते हैं। उधर मादा गर्भवती हुई कि नर का काम प्रारंभ हुआ। वह अपने मुँह से हवा के बुलबुले छोड़ता घूमता है। इन बुलबुलों को वह इकट्ठा करके अपने शरीर से एक विशेष प्रकार का लसलसा पदार्थ निकालकर अपनी पीठ में चिपका लेता है। विदिशा के पास बौद्धों का एक तीर्थ है—साँची। एक छोटी-सी पहाड़ी पर अर्द्ध चंद्राकार अनेक स्तूप खड़े हैं। अधिक ऊँचाई से देखने पर स्तूप एक बस्ती से लगते हैं। इसी प्रकार की, स्तूपों

वाली बस्ती-सी नर बेट्टा की पीठ पर तैयार हो जाती है। सूखने पर यह कुछ कड़ी हो जाती है और उसमें परिवर्तन का प्रभाव प्रवेश नहीं कर पाता।

मादा पानी की सतह पर अंडे देना प्रारंभ करती है, तो नर महाशय उस स्थान पर गहरे पानी में चले जाते हैं और वहीं से अंडों की प्रतीक्षा करने लगते हैं। पति-पत्नी के सहयोग का यहाँ अद्वितीय उदाहरण देखने को मिलता है।

अंडे पानी से अधिक भारी होने के कारण डूब जाते हैं और सतह की ओर भागे चले जाते हैं। वहाँ नर बेट्टा पहले से ही प्रतीक्षा में खड़ा मिलता है। वह अंडों का स्वागत करता है और उन्हें अपनी पीठ वाली कालोनी में मुँह से पकड़-पकड़कर डाल देता है। अंडे उन बुलबुलों की कोठरी में विकसित होने लगते हैं।

इस अतिरिक्त उत्तरदायित्व को सँभालना मादा जानती है, यह एक कठिन कार्य है इसलिए वह पति की कृतज्ञता को भूलती नहीं। इधर-उधर घूमकर उसे कुछ खाने को मिलता है, वह लेकर पहुँचती है और नर को खिलाती है। हमेशा ध्यान रखती है कि पति किसी प्रकार भूखा न रहे, उसे ताजा भोजन मिलता रहे।

बच्चे निकल आते हैं। छोटे-छोटे बच्चों में क्रियाशीलता होती ही अधिक है। यह बच्चे फिर चुप कहाँ बैठें ? बार-बार कोठरियों से निकल-निकलकर भागते हैं। तब नर सावधानी से उन्हें बार-बार भीतर कर लेता है और इस तरह जब तक बच्चे बड़े नहीं हो जाते, नर उस भार को अपनी पीठ में बाँधे रखता है।

उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका की नदियों में कुछ मछलियों को अंडे देकर सुरक्षा के लिए उन्हें अपने मुँह में रखना पड़ता है। ऐसा न करें तो उन्हें दूसरे जीव-जंतु मारकर खा जाते हैं। मुँह में रखकर बच्चों को पालना ऐसा ही कठिन कार्य है—जैसे कठिनाइयों से भरा मनुष्य का जीवन। पेट भरने से लेकर पैसा कमाने, घर बनाने, घर बसाने, बच्चों को परवरिश, उनकी ब्याह-शादियाँ, शिक्षा-दीक्षा,

सचमुच सारा जीवन कर्त्तव्यों का पुलिंदा है—उन झंझटों को पार करना कठिन हो जाता, यदि पुरुष को नारी का सहयोग न मिलता। पति-पत्नी परस्पर प्रेम और सहयोग से इस रूखे संसार में भी सरसता और आनंद पैदा कर लेते हैं।

मादा उन अंडों को अकेले दिन भर मुँह में रखती तो भूखों-प्यासों मर जाती। अकेला नर भी यह काम नहीं कर सकता था। औरों की जिम्मेदारी पर छोड़ने का अर्थ होता अपने कर्त्तव्य से विमुख होना और अपनी संतति को संकट में डाल देना। इस महापाप से बचने के लिए नर और मादा जिस सहयोग-भावना का परिचय देते हैं, वह मनुष्य के लिए सीखने का एक बहुत ही भला उदाहरण है।

मादा जब थकने लगती है, नर उसके मुँह से अपना मुँह जोड़ देता है और वह अंडे अपने मुँह में ले लेता है। अब मादा इधर-उधर टहलती और भोजन ग्रहण करती तथा विश्राम कर लेती है। इससे उसके शरीर में फिर ताजगी आ जाती है, तब तक पति महोदय थक गए होते हैं, तो वह अंडों को फिर अपने मुँह में ले लेती है। इस तरह दोनों हँसते-खेलते अपना जीवन पार कर लेते हैं।

मछलियों का जीवन दांपत्य-प्रेम, सहयोग और कर्त्तव्य-भावना का आदर्श उदाहरण है। 'वटरफिश' नामक एक मछली जिसकी लंबाई कुल १० इंच ही होती है, अंडे देती है और उन्हें एक गेंद के आकार में इकट्ठा कर लेती है। इनकी सुरक्षा के लिए नर और मादा दोनों ओर से गेंद के किनारे घेरा डाल देते हैं। जहाँ जाते हैं दोनों साथ-साथ ऐसे ही अंडों को सुरक्षा में लिए हुए जाते और भोजन प्राप्त करते हैं। पति अपने सहयोग से एक क्षण को भी पत्नी को वंचित नहीं करता है।

भारतीय प्रशांत महासागर में 'करटस' नाम की एक मछली पाई जाती हैं, जिनमें नर को अपने कर्त्तव्य पालन की कठोर परीक्षा

देनी पड़ती है और नर उस कर्त्तव्य को परिश्रम और भावना के साथ पूरा भी करता है।

मादा अंडे देकर उन्हें दो बराबर-बराबर हिस्सों में बाँटकर दो गोल गेंदों की आकृति में कर देती है। दोनों गोलों का एकदूसरे से संबंध बनाए रखने के लिए वह एक डोरा (चैन) बाँध देती है। इरादा यह होता है कि वह उस डोरे को पकड़कर खींचती हुई अंडों को इधर-से-उधर टहलाया करेगी, पर नारी जाति प्रकृति से ही कोमल और कमजोर होती है। उसके शरीर में भारी-भरकम और अधिक परिश्रम वाले काम करने की क्षमता नहीं होती, इसलिए मनुष्यों की आचार संहिता तैयार करने वाले मनीषियों ने पुरुष को श्रम वाले कठोर काम दिए और नारी को घर के हलके-फुलके काम। दोनों का सामंजस्य कर देने से गृहस्थ आनंदपूर्वक चलता रहता है। लगता है यह प्रेरणा हमें प्रकृति के इन नाबूझ जीवों से ही मिलती है। पुरुष ने जैसे ही देखा कि मादा 'करटस' उस भार को ढोने में समर्थ नहीं तो वह आगे बढ़कर आता है और अपने सिर पर लगे हुए हुक के आकार की एक खूँटी से उस डोरे को बाँध लेता है और फिर उन्हें यहाँ से वहाँ घुमाता रहता है। इस स्थिति में मादा करटस अपने पति के भोजन का भी प्रबंध करते देखी गई है।

मछलियों में कुछ जातियाँ तो ऐसी भी होती है जिनके नरों को प्रकृति जन्म से ही एक थैली (ब्रूड पाउच) प्रदान करती है। इन जातियों में नर को अनिवार्यत: अंडों को इन थैलियों में रखकर पालना पड़ता है। लगता है जो मनुष्य इस जीवन में गृहस्थ के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का समुचित पालन नहीं करते, नारी पर ही बोझ डालते रहते हैं, पर स्वयं आलस्य और प्रमाद का जीवन जीते हैं, प्रकृति इन नरों की श्रेणी में जन्म लेने का दंड देती है, ताकि वे यह सीखें कि गृहस्थ स्वार्थ की दृष्टि से नहीं, कठोर कर्त्तव्य-भावना से बसाए और चलाए जाते हैं। वही लोग इस पृथ्वी पर दांपत्य जीवन

का आनंद भी पाते हैं, जो पति–पत्नी एकदूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों का उदारतापूर्वक परिपालन करते हैं।

मध्य एशिया में पाई जाने वाली मादा 'क्वेल' चिड़िया अपने बच्चों को बड़ा अनुशासित रखती है। जब तक वे बड़े नहीं हो जाते इकट्ठे मिलकर चलते, उठते–बैठते और खाते–पीते हैं। फिर भी कई बार शिकार पक्षी आक्रमण कर देते हैं, उनसे जान बचाना मुश्किल पड़ता है।

क्वेल तब बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लेती है। उसने जैसे ही देखा कि कोई शिकारी पक्षी झपटा, वह उसी दिशा में आगे बढ़कर जाएगी और उस शिकारी पक्षी के सामने उड़कर ऐसे गिर पड़ेगी मानो अब उसमें उड़ने की सामर्थ्य नहीं रही। शिकारी पक्षी इतनी आसानी का शिकार पाकर व्यर्थ परिश्रम करने का इरादा छोड़ देता है और जहाँ क्वेल पड़ी होती है उधर ही चल पड़ता है। इस बीच बच्चों को सुविधाजनक स्थान में छिप जाने का अवसर मिल जाता है। शिकारी अपने आहार के लिए आश्वस्त होता है, इसलिए उसे तो कोई सावधानी रहती नहीं, पर क्वेल चोरी आँख से चुपचाप शिकारी का यहाँ पहुँचना देखती रहती है। जैसे ही वह वहाँ पहुँचा कि वह अपने पंख तेजी से फड़–फड़ाकर स्वयं भी उड़ भागती है। पंख फड़फड़ाने से पहले तो शिकारी घबरा उठता है और दोबारा जब तक वह सँभलता है क्वेल तीर की तरह छूटकर न जाने कहाँ–की–कहाँ जा पहुँचती है। मूर्ख शिकारी को निराशा ही हाथ लगती है। दुविधा में न तो माया ही मिल पाती है और न ही राम। अपना–सा मुँह लेकर उदास भाग जाता है।

क्वेल अपने बच्चों के पास लौट आती है। पर क्वेल जानती है कि कदाचित बच्चों के जीवनकाल में ऐसी कोई स्थिति न आने पाए, वे अप्रशिक्षित रह जाएँ और फिर कभी उनके बच्चों पर आक्रमण हो तो वे अपने बच्चों की सुरक्षा कैसे करें ? इसके लिए क्वेल को वैसे ही परिश्रम करना पड़ता है, जैसे पहलवान बाहरी दंगलों में जाकर

कुश्ती-प्रदर्शन करने से पूर्व गाँव के अखाड़ों में खूब अभ्यास करते हैं। सेना में भी ऐसा ही होता है। दो बटालियनें या और बहुत-सी फौजें मिलकर अभ्यास करती हैं। दो दलों में विभक्त होकर वे इस तरह से अभ्यास करती हैं, मानो दो दुश्मन फौजें लड़ रही हों। इस प्रकार के अभ्यास में केवल गोलियाँ नहीं चलतीं और सब वैसा ही होता है जैसे युद्ध में। दोनों दल के नाम अलग-अलग रखे जाते हैं, सीमाएँ बँटती हैं, घेरेबंदी होती है, संचार-वाहन, गिरफ्तारियाँ, सामग्री-वितरण, भेदियों से पूछताछ आदि के सब ड्रामे बिलकुल असली युद्ध की तरह होते हैं। इससे सैनिकों को असली युद्ध की झाँकी मिल जाती है और जब कभी युद्ध होता है, बिना किसी घबराहट के वे सब काम कर लेते हैं। क्वेल नर और मादा भी इस तरह का अभ्यास करके अपने बच्चों को दिखाते हैं, जिससे वे सब बातें समझ जाते हैं और यदि उनके सामने कभी वैसी परिस्थिति आती है, तो वे उसे हँसी-खुशी से पार कर लेते हैं।

नीरस जीवन में सरसता

मिल-जुलकर रहने, दूसरे की सहायता करने एवं स्नेह-सद्भाव की सुकोमल डोरी से बँधे रहने पर नीरस जीवन में कितनी सरसता आती है और कठिनाइयों तथा जटिलताओं से भरा जीवनक्रम कितना सरल हो जाता है, इसे उन्मादी मनुष्य तो उतना नहीं समझ पाया जितना कि कतिपय पशु शरीरधारी जीवों ने समझा ही नहीं अपनाया भी है।

हथिनी जब प्रसव करती है तो हाथियों का सारा झुंड उसे घेर कर खड़ा हो जाता है। हाथियों का वात्सल्य प्राणिजगत में असाधारण माना जाता है। छोटे बच्चों की सुरक्षा का वे पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। माता और बच्चे का स्नेह वात्सल्य तो सभी प्राणियों में न्यूनाधिक मात्रा में होता है, पर हाथियों का पूरा स्नेह बिना अपने-पराये का भेदभाव किए पूरे झुंड में से किसी के भी बच्चे को पूरा-पूरा मिलता है। नवजात दुर्बल काय शिशु और प्रसूता का

थका शरीर हिंसक जंतुओं के लिए घात लगाने का अवसर मिल जाता है। इस संभावित संकट का सामना करने के लिए झुंड के समस्त हाथी मोरचा बाँधकर चक्रव्यूह क्रम से इस प्रकार खड़े हो जाते हैं मानो आक्रमणकारी के दाँत खट्टे करने के लिए वे आन-वान-शान के साथ कटिबद्ध हो रहे हों। योद्धाओं की चिंघाड़, कानों की फड़-फड़ाहट, पैरों को जमीन पर पटकते हुए झूमना यह बताता है कि वे वनराजों को खुली चुनौती देते हुए कह रहे हैं कि जिसका जी आए जोर अजमाए। इस सुरक्षात्मक किलेबंदी को तोड़ने की आमतौर से सिंह, व्याघ्र हिम्मत नहीं करते। कभी कदाचित् ही प्रसूता हथिनी के नवजात शिशु पर किसी हिंसक जंतु ने सफल आक्रमण किया होगा।

झुंड की हथिनियों का कार्य इस अवसर पर देखते ही बनता है। जबकि दूसरे पशुओं में अकेली मादा ही अपने प्रसव संकट से निपटती है, तब हथिनी की सहायता के लिए समूह की सभी सहेलियाँ हाथ बँटाती हैं। नवजात शिशु पर चढ़ी हुई झिल्ली को उतारने उस पर लिपी श्लेष्मा को साफ करने, सहलाने, सूड़ों का सहारा देकर खड़ा करने के प्रयास में सभी सहेलियाँ लगी होती हैं। प्रसूता आश्वस्त होकर मुदित मन धातृकर्म इस कुशलता से निपटाए जाने पर संतोष प्रकट करती रहती है। बच्चा जब तक अपने पैरों खड़ा नहीं हो जाता, तब तक समवेत समूह विसर्जित नहीं होता। जननी और शिशु जैसे-जैसे आत्मनिर्भर होते जाते हैं, उसी क्रम से यह सहयोग भी झीना पड़ता जाता है और वे लोग उस उत्तरदायित्व से मुक्ति पाते हैं।

प्रायः तीन महीने में हथिनी प्रसूतिजन्य दुर्बलता से मुक्ति पाती है और स्वयं चरने के लिए जाने के योग्य होती है तब तक अन्य हाथी उसकी भोजन-व्यवस्था तथा सुरक्षा का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं, जिससे प्रसूता को किसी प्रकार की असुविधा न होने पावे।

मनुष्य से बहुत कुछ मिलता-जुलता गोरिल्ला वानर प्रायः ५,६ फुट का होता है। मनुष्य की तरह वह दो पैरों से भी चलता है। मादा अपने बच्चों को बहुत प्यार करती है और संकट की आशंका दिखाई देने पर अपने बच्चों को छाती से चिपटाकर सुरक्षित स्थान की तरफ भागती है। गोरिल्ले प्रायः जोड़े बनाकर रहते हैं। बच्चों की सुरक्षा में वह भी मादा की पूरी सहायता करता है किसी हिंसक सिंह, व्याघ्र का आक्रमण होने की आशंका का समय आने पर जहाँ मादा गोरिल्ला बचाने और भागने का प्रयत्न करती है और चीख-पुकार करके अपने जाति बंधुओं को सहायता के लिए बुलाती है वहाँ नर क्रोधोन्मत होकर बेतरह दहाड़ता है और शत्रु को चुनौती देता है कि वह समझ-बूझकर ही आक्रमण की हिम्मत करे कि समुचित उत्तर देने की तैयारी कर ली गई है।

डॉ० जेन वान लाविक गूडोल नामक एक महिला ने पशुखोजी तंजानिया (अफ्रीका) के गोवे स्ट्रीम अनुसंधान केंद्र के माध्यम से मनुष्य के सजातीय समझे जाने वाले चिंपैंजी, गोरिल्ला, वनमानुष प्रभृति वानरों के संबंध में विस्तृत जानकारियाँ प्राप्त की हैं। यह तीस वर्ग मील का उद्यान इन्हीं वानरों के सुखपूर्वक रहने के लिए किगोमा की घाटियों में बनाया गया है। वे कहते हैं—चिंपैंजी नर, शत्रुओं से निपटने का अधिकांश काम धमकियों से पता चला लेते हैं। उनकी पारस्परिक लड़ाई में कदाचित् ही किसी को खरोंच आती हैं और जहाँ-तहाँ बाल नुचते हैं। लड़ाई का सिलसिला प्रायः चीखने, चिल्लाने, दाँत निकालने, पेड़ों की डालियाँ हिलाने, भयंकर आकृति बनाकर उछलने-कूदने और लकड़ी पत्थर फेंकने तक ही सीमित रहता है। वे ऐसी मुद्रा बनाकर आगे बढ़ते हैं मानो अब वे भयंकर आक्रमण करके ही रहेंगे, किंतु ऐसा होता नहीं। वे जानते हैं कि जो काम धमकी देने से चल सकता है उसके लिए खून-खराबी क्यों की जाय!

डॉ. गूडाल का कथन है कि चिंपैंज़ी ने कभी किसी की जान ली हो, ऐसी जानकारी उन्हें कहीं से भी कभी प्राप्त नहीं हुई है। धमकी की कला का एक अच्छा उदाहरण एक सरदार चिंपैंजी का उन्होंने दिया है। उस क्षेत्र पर उसका पूरा साम्राज्य था और सभी चिंपैंजी उससे डरकर भागते थे। बात यह थी कि उसे जंगल में कहीं मिट्टी के तेल का एक टूटा कनस्तर पड़ा मिल गया। लकड़ी के टुकड़े के सहारे उसे लुढ़काने, उछालने और पीटने, बजाने की कला उसने सीख ली। इस युद्ध नगाड़े को वह ऐसी चतुरता से बजाता मानो कोई रेलगाड़ी उधर से निकल रही हो। बस, सारे चिंपैंजी उसे सुनकर भाग खड़े होते और फिर वह उस क्षेत्र का मन चाहा उपयोग करके मौज मनाया करता। इस तरह उसने सहज ही उस क्षेत्र की सरदारी अपनी मुट्ठी में कर ली।

कभी लोमड़ी आदि को घात लगाए देखती हैं, तो तालाब की सारी बत्तखें एक साथ चिल्लाने लगती हैं और उस प्रकार चीख-पुकार करके अपने समूह को सावधान कर देती है और आक्रमणकारी का मनोरथ विफल कर देती हैं।

थलचरों में भेड़िया और जलचरों में मगरमच्छ अकसर मिल-जुलकर शिकार की योजना बनाते हैं और सम्मिलित प्रयत्न से अधिक सरलतापूर्वक शिकार प्राप्त कर लेते हैं। जो मिलता है उसे वे बिना लड़े-झगड़े मिल-बाँट कर खाते हैं।

न्यू गायना के बरफीले भाग में रहने वाली काली चिड़िया जब प्यासी होती है, तो झुंड बनाकर एक जगह बैठ जाती हैं। पेट की गरमी से जो बरफ पिघलती है, उसे पीकर वे अकसर अपनी प्यास बुझाती हैं। एक चिड़िया बरफ पिघलाने का काम नहीं कर सकती इसलिए उन्हें संगठित प्रयोग ही उपयुक्त जँचा है।

सिंह विशेषज्ञ जार्ज का शैलर का कथन है कि सिंहनी अपने बच्चों को शिकार करने और चीर-फाड़ करने की कला

विधिवत सिखाती है, बच्चे को यह सब कुछ जन्मजात रूप में ही नहीं आ जाता। छोटे शिकार तो प्रायः अकेला सिंह ही कर लेता है पर, बड़े जानवर को पछाड़ने के लिए कई सिंह मिलकर आक्रमण करते हैं।

यह सोचना सही नहीं कि पशुओं में मादाएँ दुर्बल होती हैं। सच तो यह है कि वे नर की तुलना में अधिक बलवान भी होती हैं और साहसी भी। शिकार करने में सिंह का उतना पुरुषार्थ नहीं होता जितना सिंहनी का, यह स्पष्ट है कि मादा पशुओं में अपने बच्चों के प्रति असाधारण स्नेह होता है। बुद्धि की दृष्टि से मनुष्य से पिछड़ी रहने पर भी पशु माताएँ मानवी माता से किसी प्रकार ओछी सिद्ध नहीं होतीं।

अफ्रीकी हाथियों के विशेषज्ञ डॉ. ईमेर हैमिल्टन ने पता लगाया है कि हाथियों के झुंड का नेतृत्व नर हाथी नहीं, वरन मादा हथिनी करती है। बहादुरी में वह नर से कम नहीं, वरन् अधिक ही होती हैं। शिशुओं पर हमला करने वाले सिंह को कई बार क्रुद्ध हथनियों ने मिल-जुलकर पकड़ कर पैरों तले रोंद डाला है।

पेनसिलवानिया के जंगलों में पाए जाने वाले लोबो जाति के भेड़िये शिकारी होते हुए भी स्वभावतः स्नेही प्रकृति के होते हैं। उनमें से किसी की मृत्यु हो जाय, तो लाश को घेरकर देर तक वे उदास बैठे रहते हैं और शोकाकुल स्वर में बारी-बारी से रुदन करते हैं। केन निवासी डॉ० मैकक्लियरी की मृत्यु उनके स्थान से सात मील दूर अस्पताल में हुई। उनने कई लोवों भेड़िये पाल रखे थे। न जाने मालिक की सात मील दूर अस्पताल में हुई मृत्यु का पता कैसे लग गया कि वे खाना-पीना छोड़कर बेतरह चीत्कार करने लगे। इतना ही नहीं, इनका रुदन सुनकर समीपवर्ती जंगलों में रहने वाले भेड़ियों ने भी रोना आरंभ दिया और वह क्रम निरंतर कई दिन तक चलता रहा।

लोबो नर-मादा पतिव्रत और पत्नीव्रत धर्म का पालन करते हैं एक के मर जाने पर दूसरा प्राय: एकाकी जीवन व्यतीत करता है। उनकी ऐसी कितनी ही विशेषताओं पर मुग्ध होकर डॉ० क्लियरी ने इन भेड़ियों की मनोरंजक जीवन गाथा का परिचय देने वाली 'दी लीजेंड' नामक एक फिल्म बनाई है।

मादा लकड़बग्घा नर से अधिक मजबूत होती है और बहादुर भी। शिकार पर पहला अधिकार मादा का होता है। बचने पर ही नर के हाथ कुछ लगता है। आराम की जगह नर लेटा हो और उधर से मादा निकले तो नर को अपनी जगह खाली करके मादा को देनी पड़ती है। ऐसा वह स्नेह से आदर या भय से करता है, इस बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता, लकड़बग्घे प्राय: एक दर्जन तरह की आवाजें बोल सकते हैं।

बच्चा मर जाने पर हथिनी उसे सूँड़ में लपेटे कई दिन तक इधर-उधर घूमती रहती है और प्रयत्न करती है कि किसी तरह बच्चा चलने-फिरने लग जाय। जब सफलता नहीं मिलती तो पैरा सें मिट्टी खोदकर उस गड्ढे में अपने प्यारे शिशु को दफनाती है, ताकि कोई हिंसक पशु उसकी दुर्दशा न कर पाए।

मिक मादा एक साथ कई बच्चे जनती है, पर अकसर उसके थनों में दूध कम पड़ जाता है। तब बच्चे उसका मांस नोंच-नोंचकर खाने लगते हैं। बच्चों के स्नेह में सराबोर उनकी क्षुधा-निवृत्ति के लिए चुपचाप पड़ी अपना मांस बिना उफ किए-बिना हिले-जुले नुचवाती रहती है और इस प्रकार वात्सल्य की वेदी पर अपने को बलिदान करती हुई, मृत्यु के मुख में चली जाती है।

मादा दरियाई घोड़ा जल में रहती है और थल पर भी घूमती है। बच्चों को जल, थल दोनों का अभ्यास कराने के लिए वह प्राय: अपने बच्चों को पीठ पर खड़ा करके सावधानी से जलाशयों में विचरण करती है। बच्चों को छेड़ने वालों के प्रति वह आक्रमणकारी हो जाती है और डटकर टक्कर लेती है।

शिकारी कुत्तों द्वारा पीछा किया जाने पर मादा कंगारू आत्म-रक्षा के लिए बेहिसाब दौड़ती है, पर जब देखती है कि संकट निकट आ गया तो वह बच्चों को पेट की थैली में से निकालकर एक-एक करके झाड़ियों में फेंकती-छिपाती जाती है और हलकी होकर पेड़ की आड़ में खड़ी होकर डटकर शत्रु का मुकाबिला करती है। क्रुद्ध कंगारू शाकाहारी होते हुए भी अपनी बलिष्ठता के कारण शिकारी कुत्तों के पेट फाड़ डालने और उन्हें पंजों से दबाकर तालाब में डूबो देने तक में सफल हो जाता है।

कंगारू मादा गर्भाधान के पाँच सप्ताह बाद ही एक-एक इंच लंबे, लाल रंग के, प्राय: पारदर्शी बच्चों को जन्म देती है। इसे बच्चा भी कहा जा सकता है और भ्रूण भी। आस्ट्रेलिया निवासी इसे 'योगी' कहते हैं। योगी माता के पेट में बाहर लगी हुई एक विशेष थैली में जा घुसते हैं और जब तक चलने लायक नहीं हो जाते उसी में बैठे पलते रहते हैं। माता मांसपेशियों को एक विशेष तरह के पेय की तरह बनाकर अपना दूध इन बच्चों के मुँह में पहुँचाती रहती है। चार महीने तक इस प्रकार स्तनपान करने पर बच्चे थैली से बाहर निकलते हैं और घास में मुँह मारकर फिर उसी में जा घुसते हैं । वे जब थोड़े बड़े हो जाते हैं तो फिर न तो थैली में घुसने लायक जगह रहती है और न आवश्यकता। भालू से मिलती-जुलती शक्ल की 'काओला' अपने बच्चों को पीठ पर लादे फिरती है और तब तक चढ़ाए रहती है, जब तक वे लगभग उसके बदन से आधे जितने नहीं हो जाते। अमेरिका में पाया जाने वाला 'ओपोसम' अजीब किस्म का है। बच्चे माँ की पीठ पर और तनी हुई पूँछ पर लद जाते हैं। बच्चे अपनी पूँछ और दाँतों के सहारे पकड़े हुए सवारी किए रहते हैं। मादा उन्हें चावपूर्वक पालती है।

ह्वेल मछली अपने बच्चों को साथ लिए फिरती है और संकट आने पर पहले बच्चों को सुरक्षित स्थान पर छोड़ती है, पीछे उलटकर आक्रमणकारी का मुकाबिला करती है। ऐसे अवसर पर नर ह्वेल भी

पूरी तरह मादा का साथ देता है। संकट के समय भाग खड़ा होने की अपेक्षा उसे अपनी प्रियतमा के साथ मरना पसंद होता है। इसलिए ह्वेल के शिकारी एक को मार लेने में सफल हो जाने पर अपने हथकंडों से साथी को भी प्रायः मार ही लेते हैं। आमतौर से शिकारी पहले ह्वेल के बच्चों को मारते हैं, ताकि क्रुद्ध मादा लड़ने के लिए आगे-आए और उनके अस्त्र-शस्त्र से मारी जाय। मादा ह्वेल अपने बच्चों को असाधारण प्यार करती है और उनकी सुरक्षा के लिए जान की बाजी लगाए रहती है।

अलास्का की ह्वेलें गहरे समुद्र में चली जाती हैं और कुछ खा-पीकर थनों में दूध संग्रह करती रहती हैं, जैसी ही स्तनों में भारीपन आया कि वे वापस आ अपने बच्चों को इस विशाल जलाशय में से ढूँढ़ लेती है और प्यार कर दूध पिलाकर फिर नए संग्रह के लिए चली जाती हैं। जब तक बच्चे समर्थ नहीं होते, तब तक उनका यही क्रम चलता रहता है।

मनुष्य का सुविकसित मस्तिष्क यदि भावनाओं की दृष्टि से भी अग्रगामी रहा होता—स्नेह और सद्भाव की दृष्टि से भी उसके बौद्धिक अनुपात के क्रम को कायम रखा होता तो कितना अच्छा होता। नारी का सौजन्य और वात्सल्य पशु-पक्षियों और जलचरों में भी यथावत् होता चला गया है। लोक-नेतृत्व के लिए नारी-तत्त्व को इसीलिए भविष्य में प्रमुखता मिलने जा रही है, ताकि उसका कोमल हृदय संसार में शांति और सद्भावना का वातावरण विनिर्मित कर सके।

भावनाओं की संपदा अन्य प्राणियों के पास भी

भावनाओं पर मनुष्य का ही एक आधिपत्य नहीं है। बुद्धि, साधन, सुविधा, संपत्ति और अधिकार की दृष्टि से प्रकृति ने मनुष्य के साथ भले ही कोई विशेष छूट दी हो, पर उसने भावनाओं की संपत्ति प्राणिमात्र को मुक्त-हस्त से बाँटी है, ताकि वे एकदूसरे के सहयोगी, परस्पर सद्भाव संपन्न और प्रकृति के संतुलन को स्थिर बनाये रह सकें।

ज्ञान के अंकुर भी अन्य जीवधारियों में एक सीमा तक ही देखने को मिलते हैं परंतु भावनाओं की संपदा सभी जीवधारियों में प्रचुर रूप से विद्यमान है। यह बात और है कि इन भावनाओं की अभिव्यक्ति किसी और ढंग से करते हैं लेकिन भाव-संपदा की दृष्टि से वे दरिद्र नहीं है। उनकी भावाभिव्यक्ति को जहाँ तक समझा जा सका है, वह उसी स्तर और शैली की है जैसी मनुष्य समझता और व्यक्त करता है। उस दृष्टि से भी सिद्ध होता है कि भावुकता पर मनुष्य का ही एकमात्र अधिकार नहीं है, वह अन्य जीवों में भी पाई जाती है और अवसर मिलने पर वह विकसित भी होती है।

टारजन—प्रख्यात वन मानव की कथा प्रसिद्ध है। वह मात्र गप नहीं है, उसमें यथार्थता की मात्रा का भाग विद्यमान है। एक ११ वर्ष का अँगरेज बालक एक जहाज से बिछुड़कर अफ्रीका के जंगलों में जा फँसा, वहाँ उसे वानरों ने पाल लिया। अन्य पशुओं का भी उसे भावनात्मक सहयोग मिला और लगातार पंद्रह वर्ष तक उनके बीच

रहकर वह वन-परिवार के प्राणियों का परिचित ही नहीं स्नेह भाजन भी बन गया।

वन प्रदेशों में जप-साधना करने वाले तपस्वियों के पास सिंह-व्याघ्र निर्भय ही आते-जाते रहते हैं। उन्हें कष्ट देना तो दूर उलटे सहायता करते हैं। सिंह गाय का तपोवनों में जाकर एक घाट पानी पीना, इस बात का प्रमाण है कि उन्हें भाव-शून्य न समझा जाय, अवसर मिलने पर उनकी भावुकता मनुष्य से भी आगे बढ़ सकती है। उत्तर प्रदेश आगरा जिले के खंदौली कसबे के पास जंगलों में एक मादा भेड़िया ने मनुष्य के बच्चे को उठा लिया था पर, करुणावश उसे मारा नहीं, वरन् उसे दूध पिलाकर पाल लिया। जब वह ६ वर्ष का हो गया, तब शिकारियों ने इस बालक को भेड़ियों की माँद से पकड़ा था।

बंगाल के मालदा इलाके में राबर्ट वैसी नामक शिकारी ने अपने शिकार वर्णन में एक ऐसे अंधे चीते का शिकार किया था, जिसकी मित्रता एक बंदर से थी और वह बंदर ही अपनी आहट तथा आवाज के सहारे चीते को साथ ले जाकर शिकार कराता था। उक्त शिकारी ने जब उस चीते को मारा तो बंदर लड़ने आया और जब उसे भी गोली लगी, तो मरे हुए चीते की लाश तक दौड़ता हुआ पहुँचा और उसी से लिपटकर प्राण त्यागे।

सिंग डिगो में (अमेरिका) के चिड़ियाघर निर्देशक एम० बेले वेन्शली ने अपने एक प्रयोग की चर्चा करते हुए लिखा है—चिड़िया घर में एक भालू के नवजात शिशु को सूअर के नए जन्मे बच्चे के साथ रखा गया। दोनों में भारी मित्रता हो गई। दोनों साथ-साथ घूमने घर से निकलते और शाम को साथ-साथ वापस आते। भालू के बच्चे का नाम रखा गया—गागिला। सूअर के बच्चे का कोशे। कोशे बड़ा हो गया, तो कुछ उच्छृंखलता बरतने लगा और मनमौजी की तरह जाकर कहीं पड़ा रहा। शाम को चिड़ियाघर के अधिकारियों ने कोशे को गैरहाजिर पाया। तलाश किया तो मिला नहीं। ढूँढ़ने की एक

युक्ति निकाली गई। रीछ के बच्चे गागिल को कटघरे से बाहर ले जाकर अँधेरे में छोड़ दिया गया। वह अँधेरे से डरकर चिल्लाने लगा। आवाज सुनते ही कोशे से न रहा गया और जहाँ छिपा था, वहाँ से निकलकर सीधा गागिल के पास आया और उसे पकड़ लिया गया।

आरा (बिहार) जिले के एक गाँव में एक कुतिया ने बंदर के मातृ-विहीन बच्चे को अपना दूध पिलाकर पाला था। बच्चा अपनी सुरक्षा के लिए कुतिया की पीठ पर बैठा फिरता था। कुतिया अपने अन्य बच्चों के साथ उसे लेकर एक जगह सोती थी।

सीधी (मध्य प्रदेश) में एक राजपूत का कुत्ता अपने मालिक को अतिशय प्यार करता था। मालिक की मृत्यु हो गई। लाश को जलाया गया। कुत्ता देखता रहा। सब लोग घर चले गए पर, वह नहीं गया। चिता के पास ही बैठा रहा। लोगों ने उसे हटाने की बहुत कोशिश की पर हटा नहीं। खाने को दिया पर खाया नहीं। आँसू बहाता और कराहता रहा। इसी स्थिति में तेरहवें दिन उसकी मृत्यु हो गई। उसे भी मालिक के पास ही चिता पर जलाया गया।

अल्बर्ट श्वाइत्जर जहाँ रहते थे, उनके समीप ही बंदरों का एक दल रहता था। दल के एक बंदर और बंदरिया में गहरी मित्रता हो गई। दोनों जहाँ जाते साथ-साथ जाते, एक कुछ खाने को पाता तो यही प्रयत्न करता कि उसका अधिकांश उसका साथी खाए। कोई भी वस्तु उनमें से एक ने कभी भी अकेले न खाई। उनकी इस प्रेम- भावना ने अल्बर्ट श्वाइत्जर को बहुत प्रभावित किया। वे प्रायः प्रतिदिन इन मित्रों की प्रणय-लीला देखने जाते और एकांत स्थान में बैठकर घंटों उनके दृश्य देखा करते। कैसे भी संकट में उनमें से एक ने भी स्वार्थ का परिचय न दिया। अपने मित्र के लिए वे प्राणोत्सर्ग तक के लिए तैयार रहते, ऐसी थी उनकी अविचल प्रेमनिष्ठा।

विधि की विडंबना-बंदरिया कुछ दिन पीछे बीमार पड़ी, बंदर ने उसकी दिन-दिन भर भूखे-प्यासे रहकर सेवा-सुश्रूषा की पर

बंदरिया बच न सकी, मर गई। बंदर के जीवन में मानो वज्राघात हो गया। वह गुमसुम जीवन बिताने लगा।

बंदर एक स्थान पर बैठा रहता। अपने कबीले या दूसरे कबीले का कोई अनाथ बंदर मिल जाता तो वह उसे प्यार करता, खाना खिलाता, भटक गए बच्चे को ठीक उसकी माँ तक पहुँचा कर आता, लड़ने वाले बंदरों को अलग-अलग कर देता, तो कई बार अति उग्र पक्ष को मार भी देता था, पर तब तक चैन न लेता जब तक उनमें मेल-जोल नहीं करा देता। उसने कितने ही वृद्ध, अपाहिज बंदरों को पाला, कितनों ही का बोझ उठाया। बंदर की इस निष्ठा ने ही अलबर्ट श्वाइत्जर को एकांतवादी जीवन से हटाकर सेवाभावी जीवन बिताने के लिए अफ्रीका जाने की प्रेरणा दी। श्वाइत्जर बंदर की इस आत्मनिष्ठा को जीवन भर नहीं भूले।

फैजाबाद डिवीजन के सुलतानपुर जिला स्थित अस्पताल में एक बार बालक इलाज के लिए भरती किया गया। इस बालक का सियारों द्वारा अपहरण कर लिया गया था। नन्हे जीव के प्रति उनकी सहज करुणा-प्रेम उमड़ा होगा तभी तो उन्होंने उसे खाने की अपेक्षा पाल लेना उचित समझा होगा। बहुत संभव है सियारों में उसको खाने के लिए संघर्ष भी हुआ हो, पर जीत इस दिव्यशक्ति की हुई सियारों ने बच्चे को पाल लिया। उसे अपनी तरह चलना फिरना, बोलना और खाना तक सिखाकर यह सिद्ध कर दिया कि आत्मचेतना शरीर नहीं, शरीर से भिन्न तत्त्व है। वही समस्त जीवों में प्रतिभासित हो रहा है। इस भावना की ही संतुष्टि जीवन की सच्ची उपासना है।

लंदन के शाही बाग के पक्षियों में हंस और बत्तखों की कई जातियों ने अपनी जातीय संकीर्णताएँ तोड़कर अन्य जाति के हंस और बत्तखों से प्रेम संबध स्थापित किया, यह क्रम अधिकांश पक्षियों में चल पड़ने पर पक्षियों द्वारा अंतर्जातीय प्रेम प्रदर्शित करने के कारण

यहाँ के अधिकारी चिंतित हो उठे कि नसलों की शुद्धता को किस प्रकार सुरक्षित रखा जाए। वहाँ के अधिकारियों को उसके लिए जीवशास्त्रियों की मदद लेनी पड़ी क्योंकि वे पक्षियों के इस अंतर्जातीय प्रेम को रोक सकने असमर्थ रहे।

इस तरह का मुक्त प्रेम जो शारीरिक सुखों, इद्रियों के आकर्षणों जाति वर्ण और देश की सीमाओं से परे हो वही सच्चा प्रेम है। ऐसा प्रेम ही सेवा, मैत्री, करुणा, दया, उदारता और प्राणिमात्र के प्रति आत्मीयता का भाव जाग्रत कर तुच्छ जीवात्मा को परमात्मा से मिलाता है। हमारे प्रेम का दायरा संकुचित न रहकर समस्त लोक-जीवन के प्रति श्रद्धा के रूप में फूट पड़े, तो आज जो भावगत अनुभूतियाँ दुःसाध्य जान पड़ती हैं, कल वही काँच के स्वच्छ दर्पण में अपने साफ प्रतिबिंब की तरह झलकने लग सकती हैं।

'जंतु और मानव' पुस्तक के लेखक कार्लहैगेन बैक ने अपने निजी अनुभव की चर्चा करते हुए लिखा है—एक बार उनने एक युवा बाघ का जोड़ा खरीदा, वह बीमार पड़ा, तो उनने स्वयं उसके पास जाकर चिकित्सा और परिचर्या की। यह जोड़ा इतना हिल-मिल गया था कि नजदीक आने पर प्यार से विह्वल हो उठता और प्यार से घुरघुराता। पीछे उन्होंने उस जोड़े को वर्लिन की जंतुशाला को दे दिया। जब कभी वे उससे मिलने जाते तो वह बाघ जोड़ा उनसे पहले की तरह ही प्यार करता और लिपटने की कोशिश करता।

एक कुवियर ने एक पालतू भेड़िये की चर्चा करते हुए लिखा है—बचपन में उसे एक व्यक्ति ने पाला था, पर बड़ा होने पर उसे जंतुशाला को दे दिया। वह व्यक्ति जब भी जंतुशाला में गया तो भेड़िये ने उससे मिलने की आतुरता दिखाई और यदि पास आने का तनिक भी अवसर मिला, तो उसने भरपूर प्रेम प्रदर्शित करने की चेष्टा की।

'जंतुओं की कथा' पुस्तक में एंड्रयू लैग ने उस बढ़ई का विवरण छापा है जिसने एक बाघ के बच्चे को पाला था और बड़ा होने पर उसे चिड़ियाघर को दे दिया था। एक बार वह बढ़ई चिड़ियाघर गया, तो उसने बड़े प्रयत्नपूर्वक यह स्वीकृति प्राप्त की कि वह कटघरे में अपने पूर्वपरिचित बाघ के पास जा सके। वह गया तो बाघ ने उसके हाथों को चाटा, अपना सिर उसके कंधों से रगड़ा-कई घंटों उसके साथ रहा और बढ़ई जब कटघरे से बाहर जाने लगा, तो उसने उसे बार-बार जाने से रोका।

जंतुओं के मित्र पत्रिका में आडाऊ (ब्रिटेन) के कप्तान वाटसन ने अपने घोड़े की और एस.एन. पेज ने एक राजहंस की कथा छापी है जिन्होंने मनुष्यों से कम नहीं, वरन कुछ अधिक ही अपनी प्रेम भावना का परिचय दिया था।

यदि हम अपने भीतर सच्ची प्रेमभावना पैदा करें तो, देखेंगे कि उसके प्रकाश में हर कोई अपना प्रिय पात्र बनता जा रहा है और हर ओर से प्रेम की वर्षा हो रही है।

प्रेम स्नेह की अधीनता सब को स्वीकार

सेंटियागो की धनाड्य महिला श्रीमती एनन ने पारिवारिक कलह से ऊबकर जी बहलाने के लिए एक भारतीय मैना पाल ली। मैना जब से आई तभी से उदास रहती थी। एनन की बुद्धि ने प्रेरणा दी संभव है, उसे भी अकेलापन कष्ट दे रहा हो। सो दूसरे दिन एक और तोता मोल ले लिया। तोता और मैना भिन्न जाति के दो पक्षी भी पास आ जाने पर परस्पर ऐसे घुल-मिल गए कि एक के बिना दूसरे को चैन ही न पड़ता।

प्रातःकाल बिना चूक मैना तोता को 'नमस्ते' कहती। तोता बड़ी ही मीठी वाणी में उसके अभिवादन का कुछ कहकर उत्तर देता। पिंजड़े पास-पास कर दिए जाते फिर दोनों में वार्ताएँ छिड़तीं, न जाने क्या मैना कहती न जाने क्या तोता कहता पर उनको देखकर लगता ये दोनों बहुत खुश हैं। दोनों का प्रेम

प्रतिदिन प्रगाढ़ होता चला गया चोंच से दबाकर अपनी चीजें बाँटकर खाते।

कुछ ऐसा हुआ कि श्रीमती एनन की एक रिश्तेदार को तोता भा गया, वे जिद करके उसे माँग ले गईं ठीक उसी दिन मैना बीमार पड़ गई और चौथे दिन सायंकाल ५ बजे उसने अपनी नश्वर देह त्याग दी। तोता कृतघ्न नहीं था। वह बंदी था, चला तो गया, पर आत्मा को बंदी बनाना किसके लिए संभव है? वह भी मैना की याद में बीमार पड़ गया और ठीक चौथे दिन सायंकाल ५ बजे उसने भी अपने प्राण त्याग दिए। पता नहीं दोनों की आत्माएँ परलोक में कहीं मिली या नहीं, पर इस घटना ने श्रीमती एनन का स्वभाव ही बदल दिया। अब उनके स्वभाव में सेवा और मधुरता का ऐसा प्रवाह फूटा कि वर्षों से पारिवारिक कलह में जलता हुआ दांपत्य सुख फिर खिल उठा। पति-पत्नी में कुछ ऐसी घनिष्ठता हुई कि मानो उनके अंत:करण में तोता-मैना की आत्मा ही साक्षात उतर आई हों। उनकी मृत्यु भी वियोगजन्य परिस्थितियों में एक ही दिन एक ही समय हुई।

तोता, मैना, बंदर, छोटे-छोटे सौम्य स्वभाव जीवों की कौन कहे, प्रेम की प्यास तो भयंकर खूँखार जानवरों के हृदय में भी होती है। एफ० कुवियर के एक मित्र को भेड़िया पालने की सूझी। कहीं से एक बच्चा भेड़िया मिल गया। उसे वह अपने साथ रखने लगे। भेड़िया कुछ ही दिनों में उनसे घुल-मिल गया मानो उनकी मैत्री इस जन्म ही नहीं जन्मों की हो।

कुछ ऐसा हुआ कि एकबार उन सज्जन को किसी काम से बाहर जाना पड़ा। वह भेड़िया एक चिड़ियाघर को दे गए। भेड़िया चिड़ियाघर तो आ गया, पर अपने मित्र की याद में दुखी रहने लगा। मनुष्य का जन्मजात बैरी मनुष्य के प्रेम के लिए पीड़ित हो यह देखकर चिड़ियाघर के कर्मचारी बड़े

विस्मित हुए। कोई भारतीय दार्शनिक उनके पास होता और आत्मा की सार्वभौमिक एकता का तत्त्वदर्शन उन्हें समझाता तो संभव था। ये भी जीवन को एक नई आध्यात्मिक दिशा में मोड़ने में समर्थ होते उनका विस्मय चर्चा का विषय भर बनकर रह गया।

भेड़िये ने अपनी प्रेम की पीड़ा शांत करने के लिए दूसरे जीवों की ओर दृष्टि डाली। कुत्ता-भेड़िये का नंबर एक का शत्रु होता है, पर आत्मा किसका मित्र किसका शत्रु, क्या तो वह कुत्ता क्या भेड़िया, कर्मवश भ्रमित अग-जग आत्मा से एक है—यदि यह तथ्य संसार जान जाए तो फिर क्यों लोगों में झगड़े हों, क्यों मनमुटाव,दंगे-फसाद, भेदभाव, उत्पीड़न और एकदूसरे से घृणा हो। विपरीत परिस्थितियों में भी प्रेम जैसी स्वर्गीय सुख की अनुभूति आत्मदर्शी के लिए ही संभव है, इस घटना का सार-संक्षेप भी यही है। भेड़िया अब कुत्ते का प्रेमी बन गया उसके बीमार जीवन में भी एक नई चेतना आ गई। प्रेम की शक्ति कितनी बलदायक है कि वह निर्बल और अशक्तों में भी प्राण की गंगोत्री पैदा कर देती है।

दो वर्ष पीछे मालिक लौटा। घर आकर वह चिड़ियाघर गया अभी वह वहाँ के अधिकारी से बात-चीत कर ही रहा था कि उसका स्वर सुनकर भेड़िया भगा चला आया और उसके शरीर से शरीर जोड़कर खूब प्यार जताता रहा। कुछ दिन फिर ऐसे ही मैत्रीपूर्ण जीवन बीता।

कुछ दिन बाद उसे फिर जाना पड़ा। भेड़िये के जीवन में लगता है भटकाव ही लिखा था फिर उस कुत्ते के पास जाकर उसने अपनी पीड़ा शांत की। इस बार मालिक थोड़ा जल्दी आ गया। भेड़िया इस बार उससे दूने उत्साह से मिला पर उसका स्वर शिकायत भरा था बेचारे को क्या पता था कि मनुष्य ने अपनी जिंदगी ऐसी व्यस्त जटिल सांसारिकता से जकड़ दी है कि उसे

आत्मीय-संवेदनाओं की ओर दृष्टिपात और हृदयंगम करने की कभी सूझती ही नहीं। मनुष्य की यह कमजोरी दूर हो गई होती तो आज संसार कितना सुखी और स्वर्गीय परिस्थितियों से आच्छादित दिखाई देता।

कुछ दिन दोनों बहुत प्रेमपूर्वक साथ-साथ रहे। एकदूसरे के चाटते, थपथपाते, हिलते-मिलते, खाते-पीते रहे और इसी बीच एक दिन उसके मालिक को फिर बाहर जाना पड़ा। इस बार भेड़िये ने किसी से न दोस्ती की न कुछ खाया-पीया। उसी दिन से बीमार पड़ गया और प्रेम के लिए तड़प-तड़पकर अपनी इहलीला समाप्त कर दी। उसके समीपवर्ती लोगों के लिए भेड़िया उदाहरण बन गया। वे जब कभी अमानवीय कार्य करते भेड़िये की याद आती और उनके सिर लाज से झुक जाते।

बर्लिन की एक सरकस कंपनी में एक बाघ था। नीरो उसका नाम था। इस बाघ को लीरिजग के एक चिड़ियाघर से खरीदा गया था। जिन दोनों बाघ चिड़ियाघर में था उसकी मैत्री चिड़ियाघर के एक नौकर से हो गई। बाघ उस मैत्री के कारण अपने हिंसक स्वभाव तक को भूल गया।

पीछे वह क्लारा हलिपट नामक एक हिंसक जीवों की प्रशिक्षिका को सौंप दिया गया। एक दिन बाघ प्रदर्शन से लौटा रहा था तभी एक व्यक्ति निहत्था आगे बढ़ा—बाघ ने उसे देखा और घेरा तोड़कर भाग निकला। भयभीत दर्शक और सरकस वाले इधर-उधर भागने लगे, पर स्वयं क्लारा हलिपट तक यह देखकर दंग रह गई कि बाघ अपने पुराने मित्र के पास पहुँचकर उसे चाट रहा है कि प्रेम जता रहा है। उस मानव-मित्र ने उसकी पीठ खूब थपथपायी, प्यार किया और कहा अब जाओ समय हो गया। बाघ चाहता तो उसे खा जाता भाग निकलता पर प्रेम के बंधनों में जकड़ा हुआ बेचारा बाघ अपने मित्र की बात मानने को बाध्य हो गया। लोग कहने लगे सचमुच प्रेम की ही शक्ति ऐसी है जो हिंसक को भी मृदु, शत्रु को भी मित्र और

संताप से जलते हुए संसार-सागर को हिम-खंड की तरह शीतल और पवित्र कर सकती है।

प्रेम की न सीमा न बंधन

सजातीय प्राणियों से प्रेम तो आम बात है परंतु ऐसे उदाहरण भी देखने में आए हैं, जहाँ दूसरे प्राणियों के बीच भी घनिष्ठ स्नेह संबंध बने। प्रख्यात लेखक सैमुअल जान्सन ने ब्रिटेन में एक खच्चर और टट्टू की अद्‌भुत मित्रता का वर्णन किया है।

बरमिंघम (ब्रिटेन) में सर सैमुअल गुडवेटि्टयर के यहाँ एक टट्टू पला था। वह बाड़े में बंद किया जाता, रात को बाड़े के फाटक की चटकनी अंदर से बंद की जाती और बाहर से कुंडी लगाई जाती थी। टट्टू अपना सिर फाटक से बाहर तो कर लेता था, पर कुंडी तक नहीं पहुँच पाता था। प्रायः देखने में यह आता कि सुबह के समय वह बाड़े के बाहर खुले मैदान में घूमता। सभी को बड़ा आश्चर्य होता था कि वह रात्रि में कुंडी खोलकर बाहर कैसे निकल आता है।

एक दिन सारा रहस्य खुल गया। उस रात सैमुअल सोया न था। उसका ध्यान उधर ही था। उसने देखा कि टट्टू भीतर की चटखनी को झटका देकर खाँचे से अलग कर लेता है और फिर वह रेंकना शुरू कर देता है। आवाज सुनकर एक खच्चर आता है और नाक से धकेलकर कुंडी खोल देता और बाद को दोनों साथ-साथ घूमते।

वेंजेल नामक जर्मन ने अपने यहाँ एक कुत्ता पाला था और एक बिल्ली। उन दोनों में बड़ी दोस्ती थी। वे एक साथ खाते-पीते उछलते-कूदते और सोते-बैठते थे। एक दिन वेंजेल की इच्छा हुई कि इन दोनों के परस्पर संबंधियों की परीक्षा भी लेनी चाहिए। वे बिल्ली को अपने कमरे में ले गए, वहाँ उन्होंने उसे खाना खिला दिया। बड़े मजे में उसने खाना खाया। श्रीमती वेंजेल ने एक प्लेट खीर अलमारी में रख दी। उसमें ताला नहीं लगा था। बिल्ली खाना

खाकर उस कमरे से बाहर निकल आई और थोड़ी देर बाद कुत्ते को अपने साथ ले आई। दोनों उस अलमारी के पास तक गए। बिल्ली ने धक्का मारकर उसकी चटकनी खोली। कुत्ते को खीर की प्लेट दिखाई दे गई। उसने प्लेट को पंजों से दबाकर सारी खीर खाली। वेंजेल छिपे-छिपे इस दृश्य को देखते रहे।

कुत्ते और बिल्ली में स्वाभाविक वैर बताया जाता है फिर भी ये दोनों एक परिवार में परस्पर सुख-दुःख का ध्यान रखकर किस प्रकार ईमानदार मित्र की तरह रहते हैं।

अलीगढ़ के कसबा जवाँ में एक बंदर और कुत्ते की मैत्री विघटित भावनाओं वाले इस युग में लोगों को चुनौती देती है और बताती है कि विपरीत स्वभाव के दो पशु परस्पर प्रेम कर सकते हैं परंतु मनुष्य परस्पर स्नेह से नहीं रह सकता। ये दोनों ही अमानव मित्र दिन-रात साथ-साथ रहते हैं। विश्राम के समय बंदर कुत्ते के जुएँ बीनकर और कुत्ता बंदर के तलुए सहलाकर अपनी प्रेम-भावनाओं का आदान-प्रदान करते हैं।

अपने स्वभाव अपनी रुचि की भिन्नता के बावजूद भी यदि दूसरे जीव परस्पर प्रेम से रह सकते हैं, तो बुद्धिशील मनुष्य को तो उनसे बढ़कर ही होना चाहिए। ऐसा नहीं होता तो यही लगता है कि चेतना की गहराई को जितना मनुष्य नहीं जान सका, दूसरे प्राणी हँसी-खुशी से समझ सकते हैं। यहाँ तक कि दो शत्रु स्वभाव के जीवों में भी उत्कृष्ट मैत्री रह सकती है।

सृष्टि का हर प्राणी, हर जीव-जंतु स्वभाव में एकदूसरे से भिन्न है। कुछ अच्छे-कुछ बुरे गुण सबमें पाए जाते हैं, पर प्रेम के प्रति सद्भावना और प्रेम की प्यास से वंचित कोई एक भी जीव सृष्टि में दिखाई नहीं देता। मनुष्य जीवन का तो संपूर्ण सुख और स्वर्ग ही प्रेम है। प्रेम जैसी सत्ता को पाकर भी मनुष्य अपने को दीन-हीन अनुभव करे, तो यही मानना पड़ता है कि मनुष्य ने जीवन के यथार्थ अर्थ को जाना नहीं।

चींटियों के जीवन में सामान्यतः मजदूर चींटियों में कोई विलक्षणता नहीं होती, उनमें अपनी बुद्धि , अपनी निजी कोई इच्छा भी नहीं होती है, एक नियम-व्यवस्था के अंतर्गत जीती रहती हैं तथापि प्रेम की आकांक्षा उनमें भी होती है और वे अपने कोमल भाव को दबा नहीं सकतीं। इस अंतरंग भाव की पूर्ति वे किसी और तरह से करती हैं। वह तितली के बच्चे से ही प्रेम करके अपनी आंतरिक प्यास बुझाती हैं। यद्यपि सह सब एक प्राकृतिक प्रेरणा जैसा लगता है, पर मूलभूत भावना का उभार स्पष्ट समझ में आता है। तितलियाँ फूलों का मधु चूसती रहती हैं उससे उनके जो बच्चे होते हैं, उनकी देह भी मीठी होती है। माता-पिता के स्थूल शारीरिक गुण बच्चे पर आते हैं—यह एक प्राकृतिक नियम है, तितली के नन्हें बच्चे, जिसे लार्वा कहते हैं, मजदूर चींटी सावधानी से उठा ले जाती हैं, उसके शरीर के मीठे वाले अंग को चाट-चाट कर चींटी अपने परिवार के लिए मधु एकत्र कर लेती है, पर ऐसा करते हुए स्पष्ट-सा पता चलता रहता है कि यह एक स्वार्थपूर्ण कार्य है, इससे नन्हें से लार्वे को कष्ट पहुँचता है, इसलिए वह थोड़ी मिठास एकत्र कर लेने के तुरंत बाद उसे बच्चे को परिचर्या भवन में ले जाती है, और उसकी तब तक सेवा-सुश्रूषा करती रहती है, जब तक लार्वा बढ़कर एक अच्छी तितली नहीं बन जाता। तितली बन जाने पर चींटी उसे हार्दिक स्वागत के साथ घर से विदा कर देती हैं। जीवशास्त्रियों के लिए चींटी और तितली की यह प्रगाढ़ मैत्री गूढ़ रहस्य बनी हुई है। उसकी मूल प्रेरणा अंतरंग का वह प्यार ही है जिसके लिए आत्माएँ जीवन भर प्यासी इधर-उधर भटकती रहती हैं।

आस्ट्रेलिया में फैलेन्जर्स नामक गिलहरी की शक्ल का एक जीव पाया जाता है। इसे सुगर स्कवैरेल भी कहते हैं। यह एक लड़ाकू और उग्र स्वभाव वाला जीव है, तो भी उसकी अपने बच्चों और परिवारीजनों के प्रति ममता देखते ही बनती है। वह जहाँ भी

जाती है, अपनी एक विशेष थैली से बच्चों को टिकाए रहती है और थोड़ी-थोड़ी देर में उन्हें चाटती और सहलाती रहा करती है मानो वह अपने अंत:करण की प्रेम भावनाओं के उद्रेक को सँभाल सकने में असमर्थ हो जाती हो। जीव-जंतुओं का यह प्रेम-प्रदर्शन यद्यपि एक छोटी सीमा तक अपने बच्चों और कुटुंब तक ही सीमित रहता है तथापि वह इस बात का प्रमाण है कि प्रेम जीवमात्र की अंतरंग आकांक्षा है। मनुष्य अपने प्रेम की परिधि अधिक विस्तृत कर सकता है इसलिए कि वह अधिक संवेदनशील और कोमल भावनाओं वाला है। अन्य जीवों का प्यार पूर्णत: संतुष्ट नहीं हो पाता इसलिए वे अपेक्षाकृत अधिक कठोर, स्वार्थी और खूँखार से जान पड़ते हैं पर इसमें संदेह नहीं कि यदि उनके अंत:करण के छिपे प्रेमभाव से तादात्म्य किया जा सके, तो उन हिंसक व मूर्ख जंतुओं में भी प्रकृति का अगाध सौंदर्य देखने को मिल सकता है। भगवान शिव सर्पों को गले में लटकाए रहते हैं, महर्षि रमण के आश्रम में बंदर, मोर और गिलहरी ही नहीं सर्प, भेड़िये आदि तक अपने पारिवारिक झगड़े तय कराने आया करते थे। सारा 'अरुणाचलम' पर्वत उनका घर था और उसमें निवास करने वाले सभी जीव-जंतु उनके बंधु-बांधव, सुहृद, सखा, पड़ोसी थे। स्वामी रामतीर्थ हिमालय में जहाँ रहते; वहाँ शेर, चीते प्राय: उनके दर्शनों को आया करते और उनके समीप बैठकर घंटों विश्राम किया करते थे। यह उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि हमारा प्रेमभाव विस्तृत हो सके, तो हम अपने को विराट विश्व परिवार के सदस्य होने का गौरव प्राप्त कर एक ऐसी आनंद निर्झरिणी में प्रवाहित होने का आनंद लूट सकते हैं, जिसके आगे संसार के सारे सुख-वैभव फीके पड़ जाएँ।

६०० वर्ष पूर्व की घटना है। रोम में एक महिला अपने बच्चे से खेल रही थी। वह कभी उसे कपड़े पहनाती कभी दूध पिलाती, इधर-उधर के काम करके फिर बच्चे के पास आकर उसे चूमती, चाटती और अपने काम में चली जाती। प्रेम-भावनाओं से जीवन की

थकान मिटती है। लगता है अपने काम की थकावट दूर करने के लिए उसे बार-बार बच्चे से प्यार जताना आवश्यक हो जाता था। घर के सामने एक ऊँचा टावर था उसमें बैठा हुआ एक बंदर यह सब बड़ी देर से, बड़े ध्यान से देख रहा था। स्त्री जैसे ही कुछ क्षण के लिए अलग हुई कि बंदर लपका और उस बच्चे को उठा ले गया। लोगों ने भागदौड़ मचायी तब तक बंदर सावधानी के साथ बच्चे को लेकर उसी टावर पर चढ़ गया।

जैसे-जैसे उसने माँ को बच्चे से प्यार करते देखा था स्वयं भी बच्चे के साथ वैसा ही व्यवहार करने लगा। कभी उसे चूमता-चाटता तो कभी उसके कपड़े उतारकर फिर से पहनाता। इधर वह अपनी प्रेम की प्यास बुझा रहा था, उसकी माँ और घर वाले तड़प रहे थे, बिलख-बिलखकर रो रहे थे। बच्चे की माँ तो एकटक उसी टावर की ओर देखती हुई बुरी तरह चीखकर रो रही थी।

बंदर ने यह सब देखा। संभवतः उसने सारी स्थिति भी समझ ली इसीलिए एक हाथ से बच्चे को छाती से चिपका लिया शेष तीन हाथ-पाँवों की मदद से वह सावधानी से नीचे उतरा और बिना किसी भय अथवा संकोच के उस स्त्री के पास तक गया और बच्चे को उसके हाथों में सौंप दिया। यह कौतुक लोग स्तब्ध खड़े देख रहे थे। साथ-साथ एक कटु सत्य, किस तरह बंदर जैसा चंचल प्राणी प्रेम के प्रति इस तरह गंभीर और आस्थावान हो सकता है। माँ के हाथ में बच्चा पहुँचा, सब लोग देखने लगे उसे कहीं चोट तो नहीं आई। इस बीच बंदर वहाँ से कहाँ गया, किधर चला गया यह आज तक किसी ने नहीं जाना।

पीछे जब लोगों का ध्यान उधर गया, तो सबने यह माना कि बंदर या तो कोई दैवी शक्ति थी जो प्रेम की वात्सल्य महत्ता दरसाने आई थी अथवा वह प्रेम से बिछुड़ी हुई कोई आत्मा थी, जो अपनी प्यास की एक क्षणिक तृप्ति देने आई। उस बंदर की याद में एक अखंड दीप जलाकर उस टावर में रखा गया। इस टावर का नाम भी

उसकी यादगार में बंदर टावर (मंकी टावर) रखा गया। कहते हैं कि ६०० वर्ष हुए वह दीपक आज भी जल रहा है। दीपक के ६०० वर्ष से चमत्कारिक रूप में जलते रहने में कितनी सत्यता है, हम नहीं जानते, पर यह सत्य है कि बंदर के अंत:करण में बच्चे के प्रति प्रसूत प्यार का प्रतीक प्रकाश स्तंभ यह टावर जब तक खड़ा रहेगा, लाखों मानवों का इस परम उदात्त ईश्वरीय प्रेरणा को ओर ध्यान आकर्षित होता रहेगा।

अमेरिका के सैनडिगो चिड़िया घर में एक बार एक बंदर दंपत्ती ने एक बच्चे को जन्म दिया। मादा ने खूब स्नेह और प्यार-पूर्वक बच्चे का पालन-पोषण किया। बच्चा अभी २० महीने का ही हुआ था कि मादा ने एक नए बच्चे को जन्म दिया। यद्यपि पहला बच्चा माँ का दूध पीना छोड़ चुका था तथापि संसार के जीवमात्र को भावनाओं की न जाने क्या आध्यात्मिक भूख है, उसे अपनी माँ पर किसी और का अधिकार पसंद न आया। उसने अपने छोटे भाई को हाथ से पकड़कर खींच लिया और खुद जाकर माँ के स्तनों से जा चिपका।

मादा ने बड़े बच्चे को भावनापूर्वक अपनी छाती से लगा लिया और उसे दूध पिलाने के लिए इनकार नहीं किया जबकि अधिकार उसका नहीं, छोटे बच्चे का ही था। दो-तीन दिन में ही छोटा बच्चा कमजोर पड़ने लगा। चिड़िया घर की निर्देशिका बेले०जे० बेनशली के आदेश से बड़े बच्चे को वहाँ से निकालकर अलग कर दिया गया। अभी उसे अलग किए एक दिन ही हुआ था, वहाँ उसे अच्छी-से-अच्छी खुराक भी दी जा रही थी, किंतु जीवमात्र की ऐसी अभिव्यक्तियाँ बताती हैं कि आत्मा की वास्तविक भूख, भौतिक संपत्ति और पदार्थ भोग की उतनी अधिक नहीं जितनी कि उसे भावनाओं की प्यास होती है। भावनाएँ न मिलने पर अच्छे और शिक्षित लोग भी खूँखार हो जाते हैं जबकि सद्भावनाओं की छाया में पलने वाले अभावग्रस्त लोग भी स्वर्गीय सुख का रसास्वादन करते

रहते हैं। बड़ा बच्चा बहुत कमजोर हो गया जितनी देर उसका संरक्षक उसके साथ खेलता उतनी देर तो वह कुछ प्रसन्न दीखता, पर पीछे वह किसी प्रकार की चेष्टा भी नहीं करता, चुपचाप बैठा रहता, उसकी आँखें लाल हो जातीं, मुँह उदास हो जाता, स्पष्ट लगता कि वह दुखी है।

गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर उसे फिर से उसके माता-पिता के पास कर दिया गया था। वह सबसे पहले अपनी माँ के पास गया पर उसकी गोद में था छोटा भाई, फिर यही प्रेम की प्रतिद्वंद्विता। उसने अपने छोटे भाई के साथ रूखा और शत्रुतापूर्ण व्यवहार किया। इस बार माँ ने छोटे बच्चे का पक्ष लिया और बड़े को झिड़ककर अलग कर दिया मानो वह बताना चाहती हो कि भावनाओं की भूख उचित तो है पर औरों की इच्छा का भी अनुशासनपूर्वक आदर करना चाहिए।

कहते हैं कि अनुशासन-व्यवस्था और न्याय-नीति के लिए थोड़ी कड़ाई अच्छी ही होती है। अहिंसा की शक्ति हिंसा से हजार गुना अच्छी, घृणा नहीं, संसार में करुणा बड़ी मानी जाती है, प्रेम देना चाहिये वैर नहीं बाँटना चाहिए, पर यदि अहिंसा-हिंसा, करुणा, चाटुकारिता प्रेम में विश्वास की हिंसा की जा रही हो, अनीति और न्याय का आचरण किया जा रहा हो, तो दंड ही उस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता होती है। शक्ति की मनमानी रोकने के लिए युद्ध भी करना पड़े तो करना चाहिए। इस तरह का दंड, संघर्ष, युद्ध और उपेक्षा मानवता की ही श्रेणी में आते हैं। दंड पाकर बड़ा बच्चा ठीक हो गया अब उसने अपनी भावनाओं की—परितृप्ति का दूसरा और उचित तरीका अपनाया। वह माँ के पास उसके शरीर से सटकर बैठ गया। माँ ने भावनाओं की सदाशयता को समझा और अपने उद्धत बच्चे के प्रति स्नेह जताया उससे उसका भी उद्वेग दूर हो गया थोड़ी देर में वह अपने पिता के कंधों पर जा बैठा। कुछ दिन पीछे तो उसने

समझ भी लिया कि स्नेह, सेवा, दया-मैत्री, करुणा, उदारता, त्याग सब प्रेम के ही रूप हैं, अब उसने अपने छोटे भाई से भी मित्रता कर ली। इस तरह एक पारिवारिक विग्रह फिर से हँसी-खुशी के वातावरण में बदल गया।

आज का मनुष्य भावनाओं के अभाव में ही इतना दुराचारी, स्वार्थी और उच्छृंखल हो गया है। यदि कुत्ते और बंदर परस्पर प्रेम और मैत्रीभावना का निर्वाह कर सकते हैं, तो विचारशील मनुष्य क्यों ऐसा नहीं कर सकता। यह कोई अत्युक्ति नहीं— अलीगढ़ जिले के कसबा जवां में एक बंदर और कुत्ते में मैत्री लोगों के लिए एक चुनौती हैं। विरोधी स्वभाव के जीव जो परस्पर साथ-साथ खेलते और साथ-साथ रहते हैं। बंदर अपने मित्र के जुएँ साफ करता है, कुत्ता बंदर के तलुए सहलाता है। दोनों की मैत्री एक अव्यक्त सत्य का प्रतिपादन करते हुए कहती है कि भिन्न-भिन्न शरीर है तो क्या, आकांक्षाओं, इच्छाओं और भावनाओं वाली आत्मिक चेतना तो एक ही है। कर्मवश भिन्न शरीरों में, भिन्न देश है, जाति और वर्णों में जन्म लेने वाले अपने को एकदूसरे से पृथक क्यों समझें? सब लोग अपने आपको विश्वात्मा की एक इकाई मानकर ही परस्पर व्यवहार करें, तो संसार कितना सुखी हो जावे।

निसर्ग में यह आदर्श पग-पग पर देखने को मिलते हैं। कैफनी एस० सी० में स्टीव एंड स्किनर के पास एक मुरगी थी। एक बार उसके सद्यप्रसूत बच्चों को बाज ने पकड़कर खा लिया। उसके थोड़ी देर बाद मुरगी ने एक बिल्ली का पीछा किया लोगों ने समझा मुरगी में प्रतिशोध का भाव जाग गया है किंतु यह धारणा कुछ देर में ही मिथ्या हो गई जब कि मुरगा ने बिल्ली को पकड़ लिया। उसके पास आ जाने से उसके चारों बच्चे भी पास आ गए मुरगी ने चारों बच्चे स्वयं पाले और इस तरह अपनी भावना भूख को बिल्ली के बच्चों से प्यार करके पूरा किया।

डॉ० साहबर्ट ने जंगल जीवन की व्यांख्या करते हुए एक गिलहरी और गौरया में प्रगाढ़ मैत्री का वर्णन किया है—गिलहरी यद्यपि अपने बच्चों की देखरेख करती और अपने सामाजिक नियमों के अनुसार अन्य गिलहरियों से मेल-मुलाकात भी करती, पर वह दिन के कम से कम चार घंटे गौरया के पास आकर अवश्य रहती, दोनों घंटों खेला करते। दोनों ने एकदूसरे को कई बार आकस्मिक संकटों से बचाया और जीवन-रक्षा की। गिलहरी आती तब अपने साथ कोई पका हुआ बेर गौरैया के लिए अवश्य लाया करती। गौरैया वह बेर गिलहरी के चले जाने के बाद खाया करती।

भावनाओं की प्यास सृष्टि के हर जीव को है—यही एकात्मा का प्रमाण है। प्यार तो खूँखार जानवर तक चाहते हैं। रूसी पशु प्रशिक्षक एडर बोरिस की मित्रता क्रीमिया नामक एक शेर से हो गई। दिन भर वे कहीं भी रहते पर यदि एकबार भी मिल न लेते तो उनका मन उदास रहता। मिलते तो ऐसे जैसे दो सगे बिछुड़े भाई वर्षों के बाद मिले हों। एकबार एक सरकस का प्रदर्शन करते हुए बोरिस के शेर भड़क उठे और वे उसे चबा जाने को दौड़े किंतु तभी पीछे से वहाँ क्रीमिया जा पहुँचा उसने शेरों को घुड़ककर हटा दिया। बोरिस बाल-बाल बच गया।

स्वामी दयानंद एकबार बूढ़े केदार के रास्ते पर एक स्थान में ध्यानमग्न बैठे प्रकृति की शोभा का आनंदपान कर रहे थे, उस समय एक साधु भी वहाँ पहुँच गए। साधु ने महर्षि को पहचानकर प्रणाम किया ही था कि उन्हें एक शेर की दहाड़ सुनाई दी शेर उधर ही चला आ रहा था। यह देखते ही वह महात्मा काँपने लगे। दयानंद ने हँसकर कहा—बाबा डरो नहीं शेर खूँखार जानवर है तो क्या हुआ मनुष्य के पास दिव्य प्रेम की आत्मभावना की ऐसी जबरदस्त शक्ति है कि वह एक शेर तो क्या सैकड़ों शेरों को गुलाम बना सकती है। सचमुच शेर वहाँ तक आया। साधु भयवश कुटिया के अंदर चले गये पर महर्षि वहीं बैठे रहे। शेर

स्वामीजी के पास तक चला आया। उन्होंने बड़े स्नेह से उसकी गरदन और सिर पर हाथ फेरा वह भी वहीं बैठ गया। उसकी आँखों की चमक कह रही थी जीवन की वास्तविक प्यास और अभिलाषा तो आंतरिक प्रेम की है। कुछ देर वहाँ बैठकर एक सबक देकर चला गया। पर भावनाओं का यह पाठ, प्रेम की यह शिक्षा मनुष्य कब पढ़ेगा कब सीखेगा? जिस दिन मनुष्य भावनाओं का सच्चे हृदय से आदर करना सीख जाएगा उस दिन वह भगवान हो जाएगा और यह धरती ही स्वर्ग हो जाएगी। तब स्वर्ग अन्यत्र ढूँढ़ने की आवश्यकता न पड़ेगी।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा